आचार्य अभिनवगुप्त का राष्ट्र के प्रति अवदान

डॉ. ममता त्रिपाठी

भारत नीति प्रतिष्ठान
India Policy Foundation

आचार्य अभिनवगुप्त का राष्ट्र के प्रति अवदान

(कालीचरण पुरी छात्रवृत्ति के अधीन
प्रस्तावित शोध-प्रबन्ध)

डॉ. ममता त्रिपाठी

भारत नीति प्रतिष्ठान
India Policy Foundation

इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रतिलिपिकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानान्तरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से, इलेक्ट्रॉनिक , यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी और ढंग से, प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

प्रकाशक:
भारत नीति प्रतिष्ठान
डी-51, हौज खास, नई दिल्ली-110016 (भारत)
दूरभाष: 011-26524018
फैक्स: 011-46089365
ई-मेल: info@ipf.org.in, indiapolicy@gmail.com
वेबसाइट: www.ipf.org.in

© भारत नीति प्रतिष्ठान

प्रथम संस्करण: अप्रैल 2021

आचार्य अभिनवगुप्त का राष्ट्र के प्रति अवदान

आचार्य अभिनवगुप्त साहित्य के विद्यार्थियों और नाट्यशास्त्र के अध्येताओं के लिये एक सुपरिचित व्यक्तित्व हैं। आचार्य अभिनवगुप्त भरतमुनिप्रणीत नाट्यशास्त्र के टीकाकार, काव्यशास्त्रमर्मज्ञ और प्रमुख शैवाचार्य हैं। उन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र के एक प्रमुख सिद्धान्त 'ध्वनिसिद्धान्त' के आधारभूत ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' पर लोचन नामक टीका की रचना की। 'ध्वन्यालोक' आचार्य आनन्दवर्द्धन प्रणीत सिद्धान्तग्रन्थ हैं, जिसके अन्तर्गत काव्य के विभिन्न पक्षों पर विशद चर्चा करते हुये उत्तम काव्य को ध्वनिकाव्य माना गया है। यहाँ यह बात ध्यातव्य है कि 'काव्य' शब्द का प्रयोग केवल कविता के लिये न होकर समस्त साहित्य के लिये हुआ है, जिसमें गद्य और पद्य दोनों सम्मिलित है। आचार्य आनन्दवर्द्धन प्रणीत 'ध्वन्यालोक' के द्वारा उद्भूत 'ध्वनि' के 'आलोक' को तभी देखा जा सकता है जब आपके पास नेत्र-स्वरूप आचार्य अभिनव की 'लोचन' टीका हो। अतएव लोचन की जितनी भी प्रशस्ति की जाय न्यून ही होगी। आचार्य अभिनवगुप्त ने लोचन में ध्वनिप्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्द्धन से एक कदम आगे बढ़ते हुये 'रसध्वनि' की उद्भावना की है,जो भारतीय एवं विश्व काव्यशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र को उनकी अभूतपूर्व देन है। यह आचार्य अभिनव का अवदान ही है जिसके कारण ध्वनिसिद्धान्त भारतीय काव्यशास्त्र के समस्त सिद्धान्तों में शिरोमणि बना और परवर्ती आचार्यों एवं साहित्यशास्त्रियों ने इसकी श्रीवृद्धि की।

भारतीयकाव्यशास्त्र को आचार्य अभिनव की दूसरी बड़ी देन उनके द्वारा भरतमुनिप्रणीत प्रसिद्ध नाट्यशास्त्रीयग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' पर की गयी टीका 'अभिनवभारती' है। 'अभिनवभारती' विद्वत्जनों के मध्य टीका नहीं अपितु पृथक ग्रन्थ के रूप में उसी प्रकार समादृत है जैसे कि महाभारत महाकाव्य का एकांश श्रीमद्भगवद्गीता। आज स्थिति यह है कि ध्वनिसिद्धान्त और नाट्यशास्त्र दोनों के विषय में आचार्य अभिनव प्रमुख प्रमाण हैं। यह 'अभिनवभारती' ही है जिसके माध्यम से हम रससूत्र के

पूर्ववर्ती टीकाकारों भट्टनायक, भट्टलोल्लट और श्रीशंकुक के विषय में जान पाते हैं। भारतीय शास्त्र-रचना-परंपरा में पूर्वपक्ष का विशेष महत्त्व है जिसके वर्णन और उसके द्वारा स्थापित बातों के विधिवत् सन्तोषजनक खण्डन के बिना कोई अपनी बात को स्थापित नहीं कर सकता। अतएव पूर्वपक्ष के उद्धरणों द्वारा अनेक आचार्यों के व्यक्तित्त्व व कृतित्त्व के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। यह परम्परा विभिन्न आचार्यों के काल-निर्धारण और पौर्वापर्य निर्धारण में बहुत सहायक रही है।

ये तो वे पक्ष हैं जिनसे जनमानस का और विशेषकर साहित्यशास्त्रियों, अध्येताओं का परिचय है। परन्तु इससे भी एक अन्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष है आचार्य अभिनवगुप्त के व्यक्तित्त्व और कृतित्व का वह है उनका दार्शनिक पक्ष। आचार्य अभिनवगुप्त के व्यक्तित्व में उनके दार्शनिक पक्ष की प्रधानता रही है और उनका काव्यशास्त्रीय पक्ष भी उनकी दार्शनिक धारा से प्रभावित रहा है। परन्तु उनके दार्शनिक पक्ष की चर्चा और उसके सन्दर्भ में ज्ञान बौद्धिक वर्ग में बहुत कम रहा है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमें से एक बड़ा कारण भारतीयदर्शन का 'षड्दर्शन' के रूप में रूढ़ हो जाना भी है। अपर कारणों में विभिन्न विश्वविद्यालयों में दर्शन के पाठ्यक्रम और शैवदर्शन की शाक्त और तन्त्र से यत्किञ्चित सम्बद्धता भी है।

आचार्य अभिनवगुप्त के व्यक्तित्व का प्रमुख आयाम है कि वे एक शैवाचार्य थे। काश्मीर-शैव-दार्शनिक सिद्धान्तों पर उन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। आचार्य अभिनव ने तन्त्रालोक, तन्त्रसार, मालिनीविजयवार्त्तिक, परमार्थसार, परमार्थचर्चा आदि ग्रन्थों की रचना की इसके अतिरिक्त ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी एवं भगवद्गीतार्थसंग्रह आदि उनके द्वारा प्रणीत प्रसिद्ध टीकायें हैं। उन्होंने काश्मीर शैव के मूल तत्त्वों शिव एवं शक्ति के स्तुति व आराधना हेतु स्तोत्रों की रचना भी की है जिनमें क्रमस्तोत्र, भैरवस्तोत्र, अनुत्तराष्टिका, अनुभवनिवेदनस्तोत्र, देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र आदि प्रमुख हैं।

यह हमारे लिये सौभाग्य का विषय है कि अन्य अनेक संस्कृत आचार्यों की भाँति आचार्य अभिनवगुप्त के स्थितिकाल के विषय में हमें अँधेरे में नहीं रहना पड़ा है। आचार्य का स्थितिकाल निश्चित करना सम्भव

हुआ है। उनका समय ज्ञात है क्योंकि उन्होंने स्वयं कहा है कि 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा' पर उनकी 'बृहतीवृत्ति' 1015 ई. में रची गयी और 'क्रमस्तोत्र' एवं भिरव-स्तोत्र की रचना क्रमशः 990-991 ई. व 992-993 ई. में हुयी।[1]

इस वर्ष भारतीय संस्कृति के सुधीजनों, प्रमुख धर्माचार्यों, साहित्यकारों, साहित्यशास्त्रियों, काश्मीर-परम्परा के विशेषज्ञों और भारत के सिरमौर कश्मीर की विद्वत्परम्परा के प्रति जिज्ञासु चिन्तकों द्वारा आचार्य अभिनवगुप्त सहस्त्राब्दी वर्ष के आयोजन का संकल्प लिया गया है। वर्षपर्यन्त देशभर में चलने वाले इस आयोजन से विद्वत्जन, विद्यार्थी, युवा, समाज, व पूरा देश आचार्य अभिनवगुप्त के माध्यम से कश्मीर के पुरातन वैभव को समझेगा, जानेगा और विचार करेगा। इसके माध्यम से सौन्दर्य और देवों की नगरी कश्मीर की ज्ञानराशि का उद्घाटन होगा। वर्तमान में बारूद और अलगाववाद के आतंकी मंसूबों से कश्मीर को सुलगा रहे आततायी भी बेनकाब होंगे।

आचार्य अभिनवगुप्त मध्यकाल की महान् विभूतियों में से एक हैं। उन्होंने ज्ञान एवं दर्शन के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान करके भारतीय ज्ञान परम्परा को संवर्द्धित और आप्लावित किया है। वे शैव सिद्धान्तों के प्रकाण्ड पण्डित और काव्यशास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् थे। अपने समय के विद्वानों में उनका स्थान शीर्षस्थ था। वे सर्वशास्त्रज्ञाता और काश्मीर शैव दार्शनिक तत्त्वों के गम्भीर नवोन्मेष व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध हैं।

अभिनवगुप्त का जन्म एवं स्थितिकाल

आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा प्रणीत कतिपय ग्रन्थों के अन्तःसाक्ष्य एवं परवर्ती शास्त्रकारों व लेखकों की कृतियों के आधार पर उनका स्थितिकाल निश्चित होता है। अतः उनका काल-निर्णय दुरूह विषय नहीं है। उन्होंने अपनी कृति 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी' के अन्त में कृति के रचनाकाल का उल्लेख किया है कि यह रचना 4115 कलिवर्ष में पूर्ण हुयी। इस रचना के पूर्ण होंने के समय काश्मीर में प्रचलित लौकिक वर्ष 90 था और मार्गशीर्ष माह के अन्त का समय था अर्थात् ईस्वी सन् के अनुसार

[1] संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, सुशील कुमार डे, पृ. 94

1014 ई.।[2] इस रचना का काल 'संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास' पुस्तक के लेखक सुशील कुमार डे ने ईस्वी सन् 1015 बताया है।[3] इसी प्रकार उन्होंने अपनी अन्य रचनाओं में भी उन्होंने रचनातिथि का उल्लेख किया है। भैरव-स्तव के अन्त में उन्होंने रचनाकाल लौकिक वर्ष 68 बताया है अर्थात् ईस्वी सन् 992-993। क्रमस्तोत्र की रचना लौकिक वर्ष 66 में हुयी अर्थात् 990-991 ई.।[4] महामहोपाध्याय पी. वी. काणे ने अभिनवगुप्त का जन्मकाल इनके प्रारम्भिक ग्रन्थों की रचना का समय 30 वर्ष की अवस्था में मानते हुये 950 ई. सन् निश्चित किया है। अपने इस निर्णय की पुष्टि के लिये उन्होंने कई तर्क दिये हैं जिसमें से अभिनव द्वारा अपने शिष्य कर्ण हेतु परात्रिंशिका पर टीका और उनके शिष्य क्षेमेन्द्र द्वारा अभिनवगुप्त को अपनी रचनाओं बृहद्कथामञ्जरी और भारतमञ्जरी में अपना गुरु बताना सम्मिलित है। आचार्य अभिनवगुप्त का रचनाकाल 990 ई. से 1014-15 ई. तक माना जा सकता है। इस प्रकार उनका समय 950 ई. से 1015 ई. के मध्य स्थिर किया जा सकता है।

उनके विषय में काश्मीर परम्परा में मान्यता है और किंवदन्ती भी प्रसिद्ध है कि वे अपने बारह सौ शिष्यों के साथ भैरवस्तोत्र का पाठ करते हुये एक गुफा में प्रविष्ट होकर समाधिस्थ हो गये। मान्यता है कि यह गुफा श्रीनगर से गुलमर्ग जाने के मार्ग में पड़ती है। डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार यह गुफा बीरु अथवा प्राचीन नाम बहुरूपा में स्थित है जो श्रीनगर से 13 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर है।[5]

---

[2] इति नवतितमेस्मिन्वत्सरेऽन्तेयुगांशेतिथिशशिजलधिस्थे मार्गसीर्षावसाने। जगति विहितबोधामीश्वरप्रत्यभिज्ञाव्यवृणुतपूर्णां प्रेरितः शम्भुपादैः॥,
ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी, श्लोक सं-15, संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी. वी काणे, पृ. 302

[3] संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, सुशील कुमार डे, पृ. 94

[4] संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी. वी काणे, पृ. 302

[5] संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी. वी काणे, पृ. 302

आचार्य अभिनवगुप्त की कुलपरम्परा एवं गुरु-परम्परा

आचार्य अभिनवगुप्त के कतिपय ग्रंथों के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर हमें उनके गुरु-परम्परा, कुलपरम्परा के विषय में पता चलता है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने अपने पूर्वजों, माता-पिता एवं गुरुजनों के विषय में परात्रिंशिका की टीका और 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी' के अन्त में उल्लेख किया है। परात्रिंशिका में उन्होंने भैरव-भैरवी अर्थात् शिव-शक्ति के सम्बन्ध में 35 श्लोक रचे हैं। आचार्य के कथनानुसार उनके पूर्वज अत्रिगुप्त तत्कालीन कन्नौज राज्य स्थित अन्तर्वेदी अर्थात् गंगा-यमुना के मध्यप्रदेश में निवास करते थे। उस समय कन्नौज पर राजा यशोवर्मन (730-740 ई.) राज करते थे। इनके पूर्वज अत्रिगुप्त के विद्वत्ता की तत्कालीन विद्वानों में बड़ी प्रसिद्धि थी। वे सर्वशास्त्रों के अध्येता थे तथा शैवशास्त्रों के विशिष्ट ख्यातिलब्ध विद्वान थे। यशोवर्मन पर एक युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद विद्वान् अत्रिगुप्त की विद्वत्ता से प्रभावित होकर कश्मीर के राजा ललितादित्य (725-761 ई.) ने उन्हें कश्मीर ले जाने का आग्रह किया। इस प्रकार राजा ललितादित्य द्वारा आमन्त्रित किये जाने पर अभिनवगुप्त के पूर्वज अत्रिगुप्त का कश्मीर आगमन हुआ।[6] यह आचार्य अभिनव के पूर्वज का कश्मीर की धरा पर प्रथम आगमन था, जिसके बाद वे वहीं बस गये और उसी कुलपरम्परा में कालान्तर में अभिनवगुप्त नामक प्रसिद्ध शैवाचार्य एवं काव्यशास्त्री का जन्म हुआ।

आचार्य अभिनव के पूर्वज शैव-विद्वान् अत्रिगुप्त के लिये राजा ललितादित्य के निर्देश पर वितस्ता अर्थात् झेलम नदी के तट पर स्थित शीतांशुमौलि मन्दिर के सामने की भूमि पर भवन निर्माण हुआ और वे स्थायी रूप से वहीं निवास करने लगे। राजा ललितादित्य ने उनको सम्यक् जीवननिर्वाह् हेतु एक बड़ी जागीर भी प्रदान की। अभिनव के पूर्वज अत्रिगुप्त के बाद लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक के उनके कुल का इतिहास अभी भी अन्धकार की परिधि में है। अभी भी उसके विषय में कुछह ज्ञात नहीं हुआ है। आचार्य अभिनवगुप्त ने जहाँ भी अपने कुलपरम्परा के विषय में

---

[6] Abhinavagupta: A Historical and Philosophical Study, K. C. Pandey, p.5-6

कुछ साक्ष्य दिये हैं वहाँ इन डेढ़ सौ वर्षों के विषय में कुछ नहीं कहा है। उन्होंने अपने प्रथम ज्ञात पूर्वज अत्रिगुप्त के बाद सीधे अपने पितामह वराहगुप्त का उल्लेख किया है। के. सी पाण्डेय जी के अनुसार हम अभिनवगुप्त के पितामह वराहगुप्त को 1000 ई. के बाद का किसी भी स्थिति में नहीं मान सकते, अर्थात् उनका स्थितिकाल 1000 ई. के पूर्व ही निश्चित होता है। इस बात को स्पष्ट करने के लिये उन्होंने जिस स्रोत का प्रयोग किया है वह इस विषय में किसी प्रकार का भ्रम नहीं उत्पन्न होने देता। आचार्य अभिनवगुप्त के पिता का नाम चुरवल, चुखल, चुखुल, सुखल[7] नृसिंहगुप्त या नरसिंहगुप्त प्राप्त होता है। उनके पिता का वास्तविक नाम नृसिंहगुप्त था परन्तु जैसा कि तन्त्रालोक के प्रथम श्लोक से पता चलता है वे लोक में चुरवल नाम से प्रसिद्ध थे ।[8] आचार्य अभिनव के पिता भी उद्भट विद्वान् व परम् शिवभक्त थे। पूर्व उद्धृत श्लोक से आचार्य की माता के विषय में भी जनकारी प्राप्त होती है कि उनका नाम विमलाकला था। तन्त्रालोक के टीकाकार जयरथ के अनुसार उनके पिता का नाम नृसिंहगुप्त तथा माता का नाम विमलाकला था। ये आध्यात्म-विद्या से ओतप्रोत दम्पत्ति थे अतः उनकी सन्तान् अभिनव में माता-पिता की आध्यात्मिकवृत्ति स्वतः मुखरित हुयी अतः वे त्रिक्शास्त्र पर रचित समस्त आगमों का संग्रह करने में समर्थ हुये।

अंग्रेजी में 'अभिनवगुप्त' नामक पुस्तक के लेखक के. सी. पाण्डेय ने उपर्युक्त मत को अभिव्यक्त करते हुये आचार्य अभिनवगुप्त के पिता के विषय में कश्मीर शोध विभाग के डॉ. मधुसूधन कौल के मत का उल्लेख किया है जिसके अनुसार अभिनवगुप्त ने प्रत्यभिज्ञाशास्त्र का ज्ञान अपने पिता लक्ष्मणगुप्त से प्राप्त किया था, जो कि नरसिंहगुप्त के पुत्र और उत्पलदेव के शिष्य थे। इस बात को स्पष्ट करते हुये के. सी. पाण्डेय ने लिखा है कि निश्चय ही लक्ष्मणगुप्त अभिनवगुप्त के गुरु थे परन्तु वे उनके पिता नहीं थे। कहीं भी नरसिंहगुप्त और लक्ष्मणगुप्त के मध्य पिता-पुत्र सम्बन्ध नहीं

---

[7] संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी. वी काणे, पृ. 296

[8] विमल कलाश्रयाभिनवसृष्टिमहाभरिततनुश्च जननी पंचमुखगुप्तरुचिर्जनकः।, तन्त्रालोक, 1.1, संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी. वी काणे, पृ. 296

दिखायी देता। उन्होंने अभिनवगुप्त द्वारा रचित एक श्लोक उद्धृत करते हुये स्पष्ट किया है कि लक्ष्मणगुप्त के पिता उत्पलाचार्य अर्थात् उत्पलदेव थे।[9] अभिनवगुप्त ने स्वयं ही कहा है कि उन्होंने अपने भाई मनोरथगुप्त, कश्मीर के राजा यशस्कर के मन्त्री वल्लभ के पुत्र कर्ण तथा व्याकरन, तर्क एवं मीमांसा के कुशल विद्वान् रामदेव के लिये परात्रिंशिका पर भाष्य लिखा। उन्होंने हास्याभास पर अपने चाचा वामनगुप्त का पद्य भी उद्धृत किया है।[10] इससे पता चलता है कि उनके चाचा का नाम वामनगुप्त और भाई का नाम मनोरथगुप्त था।

अनेक स्रोतों से ज्ञात होता है कि आचार्य अभिनवगुप्त आजीवन ब्रह्मचारी थे। अतः उनके बाद की उनकी कुलपरम्परा का उल्लेख नहीं प्राप्त होता अपितु उनकी शिष्य-परम्परा का उल्लेख प्राप्त होता है।

अभिनवगुप्तपादाचार्य सर्वशास्त्रज्ञाता थे। उन्होंने विभिन्न गुरुओं से विभिन्नशास्त्रों की विधिवत् शिक्षा ग्रहण की थी। विभिन्न शास्त्रविद् होंने के कारण उनके द्वारा व्याख्यायित दर्शन में सर्वतन्त्रस्वातन्त्र्य की अपूर्व क्षमता दिखायी देती है। यह आचार्य अभिनव के विभिन्न गुरुओं के सद्ज्ञान एवं सद्शिक्षा का ही परिणाम है कि आचार्य ने भारतीय काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र और दर्शनशास्त्र को एक सर्वथा नवीन दृष्टि दी, जो दृष्टि विचारों के समन्वय एवं समेकन का मार्ग प्रशस्त करती है। आचार्य अभिनव की गुरुपरम्परा भी बहुत रोचक और विविध है। इससे ज्ञान के प्रति उनकी पिपासा और उत्कट जिज्ञासावृत्ति का ज्ञान होता है। अभिनवगुप्त ने अपने समय के प्रकाण्ड विद्वानों से विभिन्न शास्त्रीय ज्ञानपरम्पराओं व दर्शनधाराओं की शिक्षा प्राप्त की। अभिनवगुप्त की पात्रता, उत्कट ज्ञानपिपासा व अनन्य गुरुभक्ति के वशीभूत हो उनके समस्त गुरुओं ने उन्हें अपने-अपने विषय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म, अति गहन और गूढ़ विषयों का ज्ञान प्रदान किया।

---

[9] Abhinavagupta: A Historical and Philosophical Study, K. C. Pandey, p.5-6

[10] संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी. वी काणे, पृ. 297

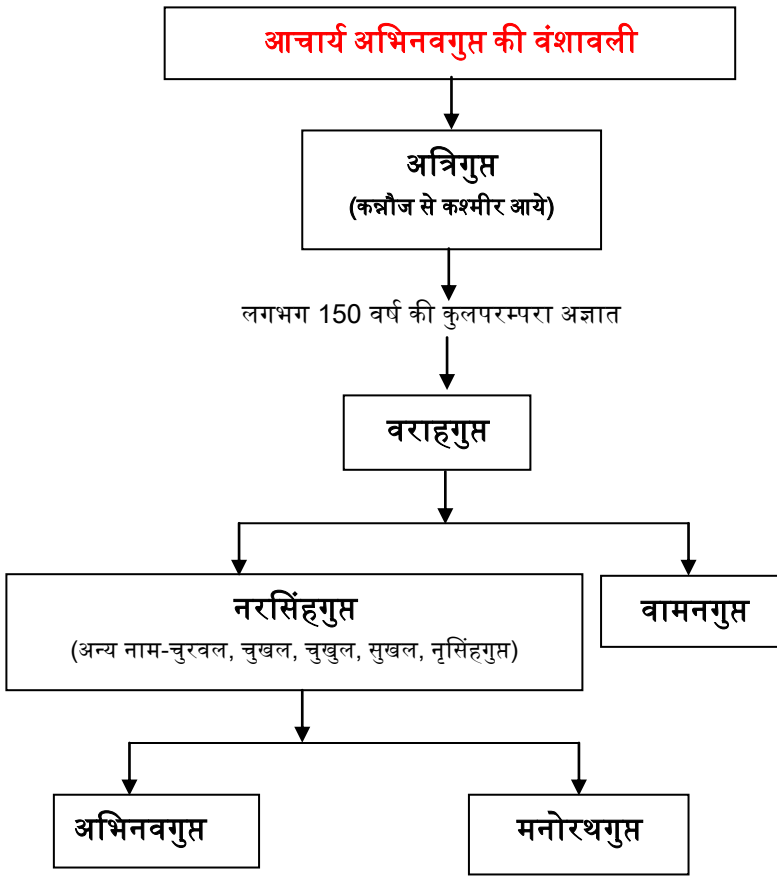
आचार्य अभिनवगुप्त की वंशावली
अत्रिगुप्त
(कन्नौज से कश्मीर आये)
लगभग 150 वर्ष की कुलपरम्परा अज्ञात
वराहगुप्त
नरसिंहगुप्त
(अन्य नाम-चुरवल, चुखल, चुखुल, सुखल, नृसिंहगुप्त)
वामनगुप्त
अभिनवगुप्त
मनोरथगुप्त

उन्होंने ज्ञानप्राप्ति हेतु सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया और विद्वान् गुरुओं से शिक्षा प्राप्त की। वे जालन्धर गये और वहा गुरु शम्भुनाथ से कौलिक शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण की। ऐसा माना जाता है कि कुल सम्प्रदाय में दीक्षित होंने के बाद ही उन्हें आत्मशान्ति की प्राप्ति हुयी।[11]

आचार्य अभिनवगुप्त के पूर्वज एवं परिवार शैव मतानुयायी थी जैसा कि उनके अपने वर्णन से पता चलता है। उनके पूर्वज अत्रिगुप्त स्वयं शैवमातानुयायी थे, जिन्हें राजा ललितादित्य जो वैष्णव मतावलम्बी थे, उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर अपने साथ कश्मीर ले गये थे। शैव दर्शन का ज्ञान आचार्य अभिनवगुप्त को परम्परा से तो था ही परन्तु उन्होंने भूतिराजतनय एवं लक्ष्मणगुप्त आदि गुरुओं से विशेष शिक्षा ग्रहण ही। व्याकरणशास्त्र की शिक्षा उन्हें अपने पिता नरसिंहगुप्त से ही प्राप्त हुयी। ब्रह्मवेद्या में उनके गुरु भूतिराज थे। तन्त्र के अध्ययन में आचार्य अभिनव की गुरु परम्परा में सुमतिनाथ, सोमदेव, शंभुनाथ आदि आचार्य आते हैं। [12] अभिनवगुप्त ने लक्ष्मणगुप्त से शैवाद्वैतवादीदर्शन प्रत्यभिज्ञाशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की। अपनी रचना 'मालिनीविजयवार्त्तिक' में आचार्य अभिनवगुप्त ने अपने गुरु लक्ष्मणगुप्त का नामोल्लेख अत्यधिक आदर के साथ किया है। अभिनवगुप्त की गुरुपरम्परा में आचार्य उत्पलदेव का नाम भी आता है। उन्होंने अपनी कृति 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-लघुवृत्ति' में आचार्य उत्पल को गुरुओं का गुरु अर्थात् परम् गुरु कहा है।[13] अपने अन्य ग्रन्थों में उन्होंने उत्पलदेव के मत का उल्लेख भी किया है। आचार्य अभिनवगुप्त के काव्यशाअस्त्र और नाट्यशास्त्र के गुरु क्रमशः भट्टेन्दुराज और भट्ट तौत थे।

इसके अतिरिक्त आचार्य अभिनवगुप्त ने न्याय, वैशेषिक, बौद्ध, जैन और वैष्णव आदि मतों एवं दर्शनधाराओं की भी शिक्षा ग्रहण की। उनके गुरु परम्परा पर उनका ग्रन्थ तन्त्रालोक पर्याप्त प्रकाश डालता है। तन्त्रालोक के अध्ययन से आचार्य अभिनवगुप्त की सर्वज्ञानसमावेशी और सर्वदर्शनसमन्वयात्मिका प्रतिभा का भी दर्शन होता है।

---

[11] Abhinavagupta: A Historical and Philosophical Study, K. C. Pandey, p.12

[12] संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी. वी काणे, पृ. 299

[13] संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, सुशील कुमार डे, पृ. 103

आचार्य अभिनवगुप्त के गुरु

नरसिंहगुप्त (पिता)	व्याकरण
वामनाथ	द्वैत तन्त्र
भूतिराज	ब्रह्मविद्या
भूतिराजतनय	द्वैतवादी शैवदर्शन
लक्ष्मणगुप्त	क्रम एवं त्रिक दर्शन
इन्दुराज	ध्वनिसिद्धान्त
भट्ट तौत/भट्ट तोत	नाट्यशास्त्र
शम्भुनाथ	कौलिक शास्त्र

स्रोत: Abhinavagupta: A Historical and Philosophical Study, K. C. Pandey, p.12

आचार्य अभिनवगुप्त का रचना-संसार

साहित्य और दर्शन दोनों आचार्य अभिनवगुप्त के अभूतपूर्व अवदान का चिरऋणी रहेगा। एक काव्यशास्त्री और दर्शनशास्त्री के रूप में उन्होंने पुरातन का अवलम्बन करते हुये सर्वथा नूतन मार्ग प्रशस्त किया। यही कारण है कि साहित्यशास्त्र और दर्शनशास्त्र दोनों विधाओं में उनके अनुयायियों की परम्परा दीर्घकाल तक दृष्टिगत होती है। वर्तमान समय में विश्व-साहित्य-पटल पर हमें गौरवान्वित होंने का अवसर आचार्य अभिनवगुप्त के अमूल्य अवदान के कारण ही प्राप्त होता है। भारतीय नाट्यविधा के अबतक के प्राप्त महत्त्वपूर्णग्रन्थ नाट्यशास्त्र के अस्तित्त्व का आधार अभिनवविरचित टीका 'अभिनवभारती' ही है। यह अभिनवभारती का अभिनव आलोक ही है कि हम भारतीय नाट्यपरम्परा का इतिहास और उस परम्परा के प्रवाह में अपना विशिष्ट अवदान करने वाले विद्वान् टीकाकारों और शास्त्रकारों के विषय में यत्किञ्चित् जानकारी प्राप्र करने में सक्षम हैं।

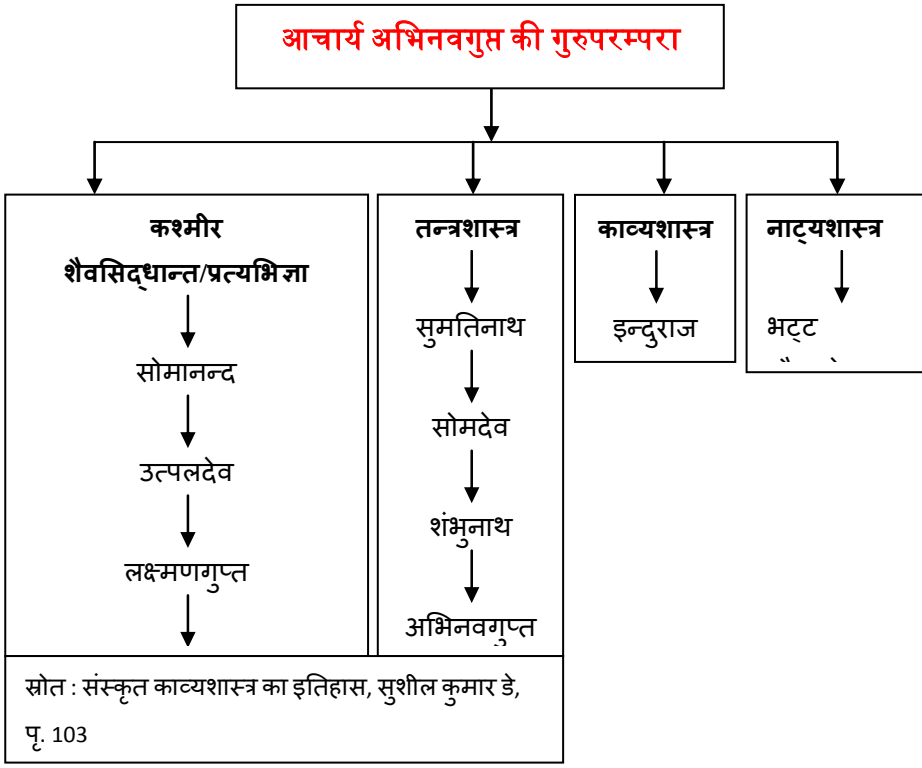

स्रोत : संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, सुशील कुमार डे, पृ. 103

आचार्य अभिनव की रचनाधर्मिता और उनके रचना-संसार का यदि अवलोकन और विवेचन किया जाय तो प्रथम दृष्ट्या उसे दार्शनिक ग्रन्थ एवं काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ दो श्रेणियों में वर्गीकृत करना होगा। सूक्ष्म रूप से आचार्य की कृतियों का चतुर्विध वर्गीकरण उचित होगा- तन्त्र विषयक रचनायें, स्तोत्र-साहित्य, काव्यशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र विषयक कृतियाँ, कश्मीर के शैवाद्वैतदर्शन अथवा प्रत्यभिज्ञादर्शन विषयक ग्रन्थ। उन्होंने अनेक मौलिक कृतियों की रचना की है तथा साथ ही अनेक ग्रन्थों पर टीका भी लिखी है। वे ऐसे दर्शनशास्त्री व काव्यशास्त्री हैं जो अपने मौलिकग्रन्थों की अपेक्षा टीकाग्रन्थों के कारण अधिक प्रसिद्ध हैं। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उनके मौलिक ग्रन्थ जो कि अधिकांश तन्त्र विषयक हैं, अभी अपेक्षाकृत प्रकाश में नहीं आ पाये हैं।

तन्त्र विषयक रचनायें-

तन्त्रालोकः- तन्त्रालोक आचार्य अभिनवगुप्त की तन्त्र-विषयक मौलिक कृति है। यह एक बृहद् ग्रन्थ है। इसमें शैवसाधना, आचार-व्यवहार, योग-पद्धतियों तथा तान्त्रिक साधना का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। यह ग्रन्थ जयरथकृत 'विवेक' व्याख्या के साथ 8 खण्डों में प्रकाशित है।

तन्त्रसारः- तन्त्रालोक में विस्तार से वर्णित विषयों का सार संक्षेप तन्त्रसार में दिया गया है। मुकुन्दराम शास्त्री ने इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है । इसका प्रकाशन श्रीनगर स्थित प्रत्नविद्याप्रकाश कार्यालय से सन् 1918 में हुआ था। वर्तमान में यह ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद के साथ दो खण्डों में प्रकाशित है।

तन्त्रवटधानिकाः- इस ग्रन्थ में विषय में अभी भी सन्देह है कि यह आचार्य अभिनव द्वारा रचित है अथवा नहीं। इसमें तन्त्रसार का ही पद्यात्मक वर्णन है। मुकुन्दराम शास्त्री ने इस ग्रन्थ का भी सम्पादन किया है। इसका प्रकाशन श्रीनगर स्थित प्रत्नविद्याप्रकाश कार्यालय से सन् 1918 में हुआ था। वर्तमान में यह मराठी अनुवाद के साथ सिद्धयोग प्रकाशन, पुणे से प्रकाशित है।

मालिनीविजयवार्त्तिकः- यह ग्रन्थ मालिनीविजयतन्त्र पर लिखा गया वार्त्तिक है। इस ग्रन्थ में मालिनीविजयतन्त्र के अत्यन्त गूढ विषयों पर

विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसमें शैवयोग के विभिन्न रहस्य और साधनाओं का भी विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। इस वार्त्तिक से शैवदर्शन की व्यापक दृष्टि और उसके विस्तृत पटल का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें शैवदर्शन के तार्किक पक्ष का भी दर्शन होता है। इसे मधुसूधन कौल द्वारा सम्पादित किया गया है। इसका प्रकाशन श्रीनगर से सन् 1921 में हुआ था।

बोधपंचदशिका:- यह एक लघु रचना है। इसमें मात्र सोलह पद्य हैं, जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति, शैवदर्शन के आधारतत्त्व शिवशक्ति, बन्धन एवं मोक्ष आदि के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

परमार्थसार:- परमार्थसार अभिनवगुप्त का शैवविषयक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें कुल 105 कारिकायें हैं। जिनके माध्यम से परमार्थ शिव के स्वरूप को बहुत ही सरल भाषा में समझाया गया है। यह ग्रन्थ मुख्यतः सांख्य और वैष्णव दृष्टि से रचे गये प्राचीन ग्रन्थ का त्रिक दर्शन की दृष्टि से परिष्कार कर रचा गया। इसमें शैवदर्शन के 36 तत्त्वों का निरूपण करते हुये परम् तत्त्व परमशिव का निरूपण किया गया है। यह योगिराज कृत विवृत्ति सहित श्रीनगर से 1916 में प्रकाशित हुआ था। वर्तमान में यह ग्रन्थ टीका, टिप्पणी एवं हिन्दी अनुवाद के साथ मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली से प्रकाशित है। इसका फ्रेंच भाषा में भी अनुवाद हो चुका है।

परमार्थ चर्चा:- यह एक लघु पुस्तक है। इसके अन्तर्गत शैवदर्शन के सर्वोच्च तत्त्व परम् शिव का स्वरूप एवं उसे प्राप्त करने हेतु किये जाने वाले उपायों का वर्णन है। यह के. सी. पाण्डेय के शोधग्रन्थ 'अभिनवगुप्त: ए हिस्टोरिलन एण्ड फिलॉसफिकल स्टडी' के परिशिष्ट के अन्तर्गत उल्लिखित है।

परमार्थद्वादशिका:- यह भी के. सी. पाण्डेय के शोधग्रन्थ 'अभिनवगुप्त: ए हिस्टोरिलन एण्ड फिलॉसफिकल स्टडी' के परिशिष्ट के अन्तर्गत उल्लिखित है। यह आचार्य अभिनव की रचना है या नहीं अभी इस बात में सन्देह है।

क्रमस्तोत्र:- यह रचना स्तोत्र है। इसमें काली की स्तुति में 30 पद्य लिखित हैं। ये पद्य अनेक शाक्त उपायों और गूढ़ विषयों को उद्घाटित करते

हैं। यह भी के. सी. पाण्डेय के शोधग्रन्थ 'अभिनवगुप्त: ए हिस्टोरिलन एण्ड फिलॉसफिकल स्टडी' के परिशिष्ट के अन्तर्गत उल्लिखित है।

भैरवस्तोत्र:- यह ललित और गेय भाषा में एक पद्यात्मक स्तोत्र है। इसमें मात्र दस पद्य हैं जो अभिनवगुप्त एवं भैरव के तादात्म्य सम्बन्ध को निरूपित करते हैं। यह भी के. सी. पाण्डेय के शोधग्रन्थ 'अभिनवगुप्त: ए हिस्टोरिलन एण्ड फिलॉसफिकल स्टडी' के परिशिष्ट के अन्तर्गत उल्लिखित है। मान्यता है कि इसी स्तोत्र का पाट करते हुये आचार्य अभिनवगुप्त अपने शिष्यों के साथ गुफा में प्रविष्ट हो गये थे।

अनुत्तराष्टिका:- इसमें आत्मसाक्षात्कार के विश्वोत्तीर्ण रूप का वर्णन है। इसमें केवल आठ पद्य हैं। यह भी के. सी. पाण्डेय के शोधग्रन्थ 'अभिनवगुप्त: ए हिस्टोरिलन एण्ड फिलॉसफिकल स्टडी' के परिशिष्ट के अन्तर्गत उल्लिखित है।

अनुभवनिवेदनस्तोत्र:- इस रचना में मात्र चार पद्य हैं, जिसमें शाम्भवी मुद्रा का वर्णन किया गया है। यह भी के. सी. पाण्डेय के शोधग्रन्थ 'अभिनवगुप्त: ए हिस्टोरिलन एण्ड फिलॉसफिकल स्टडी' के परिशिष्ट के अन्तर्गत उल्लिखित है।

देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र:- इसमें इन्द्रियों को नियन्त्रित करने वाली शक्तियों का स्तवन किया गया है। इसमें कुल पन्द्रह पद्य है। यह भी के. सी. पाण्डेय के शोधग्रन्थ 'अभिनवगुप्त: ए हिस्टोरिलन एण्ड फिलॉसफिकल स्टडी' के परिशिष्ट के अन्तर्गत उल्लिखित है।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-लघ्वी वृत्ति:- यह उत्पलदेव रचित प्रत्यभिज्ञादर्शन के ग्रन्थ 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका' पर आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा रची गयी टीका है। इसके नाम से ही स्पष्त होता है कि यह उक्त ग्रन्थ पर लघु वृत्ति है। यह वृत्ति दो भागों में श्रीनगर से मुकुन्दराम शास्त्री द्वारा सम्पादित क्रमशःसन 1918 व 1921 में प्रकाशित है।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी-बृहती वृत्ति:- यह ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका पर एक विस्तृत टीका है। ये दोनों टीकायें

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका को समझने का प्रधान स्रोत हैं। इनके अभाव में उत्पल के ग्रन्थ काअ अर्थ समझना अन्यन्त दुरूह है।

परात्रिंशिकाविवरणः- यह 30 कारिकाओं में रची गयी एक तान्त्रिक साधना की कृति है। इसमें भैरव एवं भैरवी अर्थात् शिव-शक्ति के मध्य संवाद वर्णित है। इसमें तान्त्रिक गूढ साधना का भैरव द्वारा उपदेश है। यह विवरन अभिनवगुप्त ने आचार्य सोमानन्द की वृत्ति के आधार पर लिखा है, अतः इसमें स्थान-स्थान पर सोमानन्द की वृत्ति उद्धृत है।

श्रीपरात्रिंशिकाः- यह अभिनवगुप्त द्वारा रचित विवृत्ति सहित नीलकंठ गुरुटू द्वारा अनूदित है एवं मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली द्वारा प्रकाशित है।

भगवद्गीतार्थसंग्रहः- यह आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा की गयी भगवद्गीता की एक संक्षिप्त टीका है।

लोचनः- यह आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा संस्कृत काव्यशास्त्र के ध्वनिसिद्धान्त प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्द्धन प्रणीत ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' पर लिखी गयी टीका है। यह टीका आनन्दवर्द्धन द्वारा वर्णित ध्वनितत्त्व के प्रकाश के लिये लोचन अर्थात् नेत्र का काम करती है। जिस प्रकार कितना भी आलोक अर्थात् प्रकाश हो परन्तु नेत्र के अभाव में आप उसे देख नहीं सकते उसी प्रकार ध्वनि के प्रकाश को भी 'लोचन' रूपी नेत्र के बिना देख पाना सम्भव नहीं है। आचार्य आनन्दवर्द्धन प्रणीत ध्वन्यालोक की एक प्रामाणिक व स्थापित टीका है लोचन। 'लोचन' ने ध्वन्यालोक की प्रशस्ति को शताब्दियों तक प्रसृत करने का कार्य किया है और ध्वनिसिद्धान्त में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर उसे भारतीय काव्यशास्त्र का समादृत सिद्धान्त होंने का गौरव प्रदान किया है। यह टीका हिन्दी व अंग्रेजी अनुवादों के साथ प्रकाशित है। यह आचार्य अभिनवगुप्त की अबतक की प्रशस्ति का आधारस्तम्भ है।

अभिनवभारतीः- अभिनवभारती भारतीय ज्ञान परम्परा को अभिनवगुप्त की अमूल्य देन है। यह ऐसी धरोहर है जो भारतीय अस्मिता व रचनाधर्मिता के पटल को इतना विस्तार प्रदान करने की क्षमता से ओतप्रोत है कि शैवदर्शन की विश्वोत्तीर्ण की उद्भावना साकार रूप ले सकती है इसके द्वारा। 'अभिनवभारती' अथवा 'भारती' आचार्य भरत द्वारा

रचित नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' की एकमात्र उपलब्ध टीका है जिसके माध्यम से हमें भारतीय रंगमंच की परम्परा एवम् उसके विविध विकसित उत्कृष्ट रूपों एवम् सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णनों का ज्ञान होता है। 'अभिनवभारती' के माध्यम से अभिनवगुप्त ने भरत द्वारा रचित प्रसिद्ध रससूत्र 'तत्र भावानुभावव्यभिचारिभावसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' की व्याख्या में अपने पूर्वपक्षों का वर्णन करते हुये उनका खण्डन करते हुये सर्वथा नवीन उद्भावना की है। अभिनवभारती में शैवदर्शन के 36 तत्त्वों की भाँति 36 अध्याय हैं। अपनी इस रचना द्वारा अभिनव विश्व साहित्य में समादृत हैं। इसके हिन्दी तथा अंग्रेजी में अनेक अनुवाद उपलब्ध हैं।

उपर्युक्त बृहद् एवं लघु ग्रन्थों के अतिरिक्त आचार्य अभिनवगुप्त ने अन्य अनेक ग्रन्थों की भी रचना की थी परन्तु काल के आघात तथा दुर्भाग्यवश अनेक ग्रन्थ आज हमें नहीं प्राप्त हुये हैं। उनका यत्र-तत्र उल्लेख मात्र प्राप्त होता है। इसका एक कारण कश्मीर की विद्वत्-परम्परा का उच्छेद भी रहा है, जिसके कारण बड़ी मात्रा में व्यक्तिगत पुस्तकालय व पाण्डुलिपियाँ नष्ट हो गयीं अथवा नष्ट कर दी गयीं तथा शनैः-शनैः विस्मृति के अन्धकार में खोती चली गयीं।

ध्वनिसिद्धान्त एवं आचार्य अभिनवगुप्तः-

ध्वनिसिद्धान्त

लोक में ध्वनि शब्द का अर्थ-

लोक में *'ध्वनि'* का सामान्यतः अर्थ है शब्द अथवा आवाज। यह ध्वनि संयोग और विभाग दो कारणों से उत्पन्न होकर कर्णेन्द्रिय ग्राह्य होती है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने इस प्रकार के शब्द को शब्दज शब्द माना है-

यः संयोगवियोगाभ्यां करणैरूपजन्यते।

सः स्फोटः शब्दजाः ध्वनयोऽन्यैरुदाहृताः॥[14],

शब्दज शब्द का अनुभव घण्टानुरणन में होता है। घण्टे के बजने के बाद भी उसमें एक प्रकार की अनुगूँज होती रहती है। शब्दज शब्द का यही स्वरूप होता है। इसी अनुरणन की भाँति काव्य में भी सहृदय को वाच्यार्थ के अनन्तर व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होती है, इसीलिये व्यङ्ग्यार्थ को भी

[14] *वाक्यपदीयम्*, १.१०१, (*ध्वन्यालोक*, १.१३ पर लोचन में उद्धृत)

'ध्वनि' काव्य के अन्तर्गत गुणीभूत व्यङ्ग्य के रूप में समाहित किया गया है।

लौकिक ध्वनि के दो भेद हैं- प्राकृत और वैकृत, प्राकृत ध्वनि को ही अक्षर कहते हैं। उच्चारण के प्रथम क्षण में ध्वनि प्राकृत होती है तत्पश्चात् द्रुत, मध्यम, विलम्बित के भेद से वैकृत हो जाती है। प्राकृत ध्वनियाँ भेदरहित होती हैं। अनेक वैकृत ध्वनियों से एक ही प्राकृत ध्वनि का और प्राकृत ध्वनि से एक ही अखण्ड स्फोट का बोध होता है। ये अन्त्यबुद्धि निर्ग्राह्य प्राकृत ध्वनियाँ स्फोट की व्यञ्जक मानी जाती हैं। इस प्रक्रिया के आधार पर भी काव्यशास्त्री व्यञ्जक शब्द और अर्थ को ध्वनि नाम देते हैं-

"तेन व्यञ्जको शब्दार्थवपेह ध्वनिशब्देनोक्तौ।"[15]

आनन्दवर्द्धन ने '*ध्वन्यालोक*' नामक ग्रन्थ की रचना करके सर्वप्रथम 'ध्वनिसिद्धान्त' का एक प्रस्थान के रूप में प्रतिष्ठापन किया। आचार्य अभिनवगुप्त ने इस काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ '*लोचन*' टीका लिखकर ध्वनिसिद्धान्त की पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या की। आगे चलकर मम्मट ने '*काव्यप्रकाश*' नामक ग्रन्थ का प्रणयन कर इस सिद्धान्त को पूर्ण रूप से प्रतिष्ठापित किया।

लोचन के अन्तःसाक्ष्यों से पता चलता है कि *ध्वन्यालोक* का अपर नाम '*काव्यालोक*' एवं *'सहृदयालोक'* भी है-

"इति श्रीमहामाहेश्वराचार्यवर्याभिनवगुप्तोन्मीलिते सहृदयालोकलोचने ध्वनिसङ्केते तृतीय उद्द्योतः।"[16]

"इति.....काव्यालोकलोचने चतुर्थ उद्योतः।"[17]

ध्वनि सिद्धान्त के स्रोत-

यद्यपि संस्कृत साहित्य में ध्वनिसिद्धान्त के सन्दर्भ में आनन्दवर्द्धन प्रणीत *'ध्वन्यालोक'* से प्राचीन कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, परन्तु

---

[15] *ध्वन्यालोक,* १.१३ पर लोचन

[16] *ध्वन्यालोकलोचन*, तृतीय उद्योत, पर लोचन

[17] *वही*, चतुर्थ उद्योत पर लोचन

'समाम्नातपूर्वः'[18] कहकर स्वयं ध्वनिकार ने इसकी प्राचीनता की ओर संकेत किया है। यह सिद्धान्त 'बुधैः समाम्नातपूर्वः' के साथ-साथ *'सूरिभिः कथितः'*[19] भी है। समाम्नातपूर्वः *(परम्परया यः समाम्नातपूर्वः सम्यक् आसमन्ताद् म्नातः प्रकटितः[20])* से यहाँ तात्पर्य यह है कि यद्यपि *ध्वन्यालोक* से पूर्व इस विषय पर किसी लिखित ग्रन्थ की रचना नहीं हुई थी, तथापि मौखिक रूप से काव्य के आत्मतत्त्वविषयक विचार के प्रसङ्ग में शब्दादि प्रसिद्ध अवयवों से अतिरिक्त काव्य के जीवनाधायक तत्त्व को काव्यतत्त्ववेत्तागण स्वीकार करते थे, किन्तु लक्षणकार ही इससे सर्वथा अनभिज्ञ थे-

"यतोलक्षणकृतामेव स केवलं न प्रसिद्धः, लक्ष्ये तु परीक्ष्यमाणे स एव सहृदयहृदयाह्लादकारि काव्यतत्त्वम्।"[21]

ध्वनिकार आनन्दवर्द्धन ने सहृदयजनों के मनःप्रसादन के लिये ध्वनि का निरूपण किया है:–

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व-
स्तस्याभावं जगदुपरे भाक्तमहुस्तमन्ये।
केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयं
तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम्॥[22]

अर्थात् बुधजनों ने काव्य के आत्मा को 'ध्वनि' यह पहले से समाम्नात किया है, दूसरे लोगों ने उसका अभाव कहा, अन्य लोगों ने उसे 'भाक्त' कहा, कुछ लोगों ने उसके तत्त्व को वाणी का अगोचर कहा, अतः सहृदयजनों के मन की प्रीति के लिये उस (ध्वनि) का स्वरूप कहते हैं।

---

[18] *वही*,१.१

[19] वही,१.१३

[20] वही,१.१

[21] *वही*, १.१३

[22] *वही*,१.१

इससे प्रकट है कि ध्वनिसिद्धान्त एक प्रस्थान के रूप में प्रवर्त्तन से पूर्व भी प्रचलित था, उसको सिद्धान्तरूप प्रदान करने का एवं उसकी ग्रन्थाकार रचना का श्रेय आनन्दवर्द्धन को है। जैसा कि लोचनकार का कथन है कि इस सिद्धान्त का प्रवाह अविच्छिन्न है। *'बुधों'* ने इसे कहा है, विशिष्ट पुस्तकों में इसका स्थापन भी नहीं किया गया है:–

"अविच्छिन्नेन प्रवाहेण तैरेतदुक्तं विनाऽपि विशिष्टपुस्तकेषु विनिवेशनादित्यभिप्रायः।"[23]

'सूरिभिः' अर्थात् विद्वानों द्वारा कथित, इससे अभिप्राय वैयाकरणों से है। क्योंकि व्याकरणशास्त्र में श्रोत्रग्राह्य शब्द के लिये ध्वनि' पद का प्रयोग होता है। वैयाकरण ही प्रथम विद्वान् हैं और व्याकरण ही समस्त विद्याओं का मूल है-

"प्रथमे हि विद्वासों वैयाकरणाः, व्याकरणमूलत्वात्सर्वम्।"[24]

इस सन्दर्भ में महावैयाकरण भर्तृहरि की भी उक्ति है कि-

उपासनीयं यत्नेन शास्त्रं व्याकरणे महत्।
प्रदीपभूतं सर्वासां विद्यानां यदवस्थितम्॥[25]

अर्थात् महान् व्याकरणशास्त्र की यत्नपूर्वक उपासना करनी चाहिये, क्योंकि यह सभी विद्याओं के प्रदीप रूप में अवस्थित है। अर्थात् इसी से समस्त विद्यायें प्रकाशित होती हैं। श्रूयमाण वर्णों हेतु वैयाकरण ध्वनि'का व्यवहार करते हैं, इसी को आधार मानकर काव्यतत्त्ववेत्ताओं ने वाच्य-वाचक-सम्मिश्र शब्दरूप काव्य को भी ध्वनि' के अभिधान से संकेतित किया है। श्रोत्रग्राह्य शब्द अपने से परे स्फोटरूप नित्य शब्द का व्यञ्जक होता है। वह स्फोटरूप शब्द ही प्रधान है। इसी प्रकार काव्य में शब्द अपने वाच्यार्थ से परे किसी अन्य अर्थ को व्यक्त करते हैं। यह व्यङ्ग्यार्थ ही प्रधान होकर काव्य का आत्मभूत तत्त्व है। इसी सादृश्य को आधार मानकर काव्य के आत्मभूत तत्त्व का ध्वनि' यह नामकरण किया गया है, तथा ध्वनिकार

---

[23] *वही*,१.११ पर लोचन

[24] *ध्वन्यालोक*,१.१३

[25] *ध्वन्यालोक,* भूमिका, (जगन्नाथ पाठक), पृ. ११

आनन्दवर्द्धन ने वाच्यवाचक-सम्मिश्र शब्द रूप को 'ध्वनि' के काव्यशास्त्रीय पक्ष के समर्थन और प्रकाशन के लिये *ध्वन्यालोक* के रूप में अपना संरम्भ प्रस्तुत किया।

लोचनकार अभिनवगुप्त ने इस प्रसंग को और भी स्पष्ट किया है। उन्होंने वैयाकरणों के स्फोटसिद्धान्त के साथ आलंकारिकों के ध्वनिसिद्धान्त का पूर्णतः सामञ्जस्य स्थापित करके उसके पृष्ठाधार को साङ्गोपाङ्ग व्याख्यायित किया है।

उन्होंने ध्वनिकार के कथन को महान् वैयाकरण भर्तृहरि के श्लोकों को उद्धृत करते हुए ध्वनि' को व्यञ्जक शब्द[26], व्यञ्जक अर्थ[27], व्यङ्ग्य अर्थ[28], व्यञ्जनाव्यापार[29], तथा व्यङ्ग्य काव्य[30] में चरितार्थ बताया है।

काव्य में ध्वनि शब्द से मुख्यतः व्यङ्ग्य अर्थ, व्यञ्जक शब्द-अर्थ एवं व्यञ्जनाव्यापार इन सब का ग्रहण होता है।

व्यङ्ग्य अर्थ ध्वनि-

यह घण्टादि के शब्द के स्थान पर अनुरणन रूप होता है और व्याकरणदर्शन में उत्पत्तिवादियों के मतानुसार स्फोट वह शब्द है जो स्थान, प्रयत्न आदि से वायु में संयोग या विभाग के कारण उत्पन्न होता है और उस शब्द से उत्पन्न होने वाले घण्टानुरण रूप शब्द ध्वनि कहे जाते हैं-

"यः संयोगवियोगाभ्यां करणैरूपजन्यते।

स स्फोटः शब्दजाः शब्दा ध्वनयोऽन्यैरुदाहृताः॥"[31]

व्यञ्जक शब्द-अर्थ-

वैयाकरणों का अभिमत है कि नाद अर्थात् श्रूयमाण वर्ण स्फोट के अभिव्यञ्जक होते हैं और स्फोट अन्त्यबुद्धिनिर्ग्राह्य होता है। यह श्रूयमाण

---

[26] ध्वनति ध्वनयति वा यः स व्यञ्जकः शब्दः ध्वनिः।

[27] ध्वनति ध्वनयति वा यः सः व्यञ्जकोऽर्थः ध्वनिः।

[28] ध्वन्यते इति ध्वनिः।

[29] ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः।

[30] ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः।

[31] *वही*,१.१०३

वर्ण या नाद, जिन्हें 'ध्वनि' कहते हैं, क्रमशः स्फोट को बुद्धि में प्रकाशित या अभिव्यक्त करते जाते हैं-

"प्रत्ययैरनुपाख्येयैर्ग्रहणानुगुणैस्तथा ।।

ध्वनिप्रकाशिते शब्दे स्वरूपमवधार्यते॥"[32]

इस प्रकार व्यङ्ग्य अर्थ के व्यञ्जक शब्द-अर्थ भी प्रस्तुत काव्य-सिद्धान्त में 'ध्वनि' शब्द से अभिहित हैं।

व्यञ्जनाव्यापार रूप काव्य-

वर्णों के परिमित होने से अल्पतर यत्न से उच्चारित शब्द को जब बुद्धि नहीं ग्रहण कर पाती, उस स्थिति में वक्ता का जो प्रसिद्ध उच्चारण व्यापार से अधिक द्रुत, विलम्बित आदि वृत्तियों का भेदरूप व्यापार है उसे भी ध्वनि कहते हैं-

"शब्दस्योर्ध्वमभिव्यक्तेर्वृत्तिभेदे तु वैकृताः।

ध्वनयः समुपोहन्ते स्फोटात्मा तैर्न भिद्यते॥"[33]

अर्थात् शब्द की अभिव्यक्ति के अनन्तर वैकृत ध्वनियाँ तो द्रुत, मध्यम आदि वृत्तिभेदों का सम्पादन करती हैं और उन वृत्तियों के भेद द्वारा स्फोटात्मा में भेद उत्पन्न नहीं होता, वह अखण्ड रहता है।

द्रुत, मध्यम, और विलम्बित आदि वृत्तियाँ वैकृत ध्वनि में होती हैं और उच्चारण-व्यापार से ये अतिरिक्त व्यापार है। इसी आधार पर ध्वनिसिद्धान्त में ध्वनिकार ने प्रसिद्ध अभिधा, तात्पर्य और लक्षणा व्यापारों से अतिरिक्त व्यञ्जना व्यापार को भी ध्वनि 'कहा है।

अब जब व्यङ्ग्य अर्थ, व्यञ्जक शब्द-अर्थ, व्यञ्जनाव्यापार ये चारो ध्वनि हैं तो इनका समुदायरूप काव्य भी 'ध्वनि' पद से वाच्य है।

ध्वनि के विरुद्ध आपत्तियाँ और उनका परिहार -

---

[32] *वाक्यपदीयम्*, १.८२

[33] *वही*,१.७६

आनन्दवर्द्धन ने ध्वनि के निरूपण-क्रम में तीन सम्भावित विरोधी मतों की पूर्वपक्ष के रूप में कल्पना करके उसका युक्तिपूर्वक समाधान प्रस्तुत किया है। ये तीनों मत हैं- अभाववादी, भाक्तवादी तथा अलक्षणीयतावादी।[34]

अभाववाद- ध्वनि का अस्तित्व ही नहीं है।

भाक्तवाद- भक्ति में ही ध्वनि का अन्तर्भाव सम्भव है।

अनिर्वचनीयतावाद-ध्वनि का स्वरूप अनिर्वचनीय है।

अभिनवगुप्त ने भाक्तवादियों 'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की है, जिसके कारण 'भक्ति' शब्द लक्षणा तथ गौणी वृत्ति दोनो का ही बोधक होता है तथा इससे लक्षणा के हेतु त्रय (निमित्त, प्रयोजन एवं मुख्यार्थबाध) का भी बोध हो जाता है-

"भज्यते सेव्यते पदार्थेन प्रसिद्धतयोत्प्रेक्ष्यत इति भक्तिधर्मोऽभिधेयेन सामीप्यादिः, तत आगतो भाक्तो लाक्षणिकोऽर्थः।"[35]

अर्थात् भज्यते=सेव्यते, अर्थात् प्रसिद्ध होने के कारण जो उत्प्रेक्षित होता है, वह भक्ति है, अभिधेय के द्वारा (तटादि का) सामीप्यादि धर्म उत्प्रेक्षित होता है, उस सामीप्यादि निमित्त से आगत लाक्षणिक अर्थ भाक्त है।

समस्त पक्षों का सम्यक् समाधान करके आनन्दवर्द्धन ने ध्वनि की स्थापना की है और उसे आचार्य अभिनवगुप्त ने अपनी लोचन टीका का सहारा देकर परिपुष्ट किया है।

---

[34] काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व-

स्तस्याभावं जगदुपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।

केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयं

तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम्॥, *ध्वन्यालोक*, १.१

[35] *वही*, १.१ का वृत्तिभाग

आनन्दवर्द्धन सम्मत ध्वन्यार्थ-

ध्वनि उस विशिष्ट काव्य को कहते हैं जहाँ अर्थ स्वयं को अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके प्रतीयमान अर्थ को व्यक्त करते हैं-

"यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।

व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥"[36]

अर्थात् जिस काव्यमें व्यङ्ग्य अर्थ प्रधान है, व्यङ्ग्य अर्थ वाच्यातिशायी है, वही काव्य ध्वनिकाव्य कहलाता है। आनन्दवर्द्धन ने 'ध्वनि' पद का प्रयोग व्यङ्ग्यप्रधान काव्य के रूप में किया है।

व्यङ्ग्यार्थ-स्वरूप-

आनन्दवर्द्धन ने सहृदयहृदयाह्लादकारी काव्य में द्विविध अर्थ की सत्ता स्वीकार की है। प्रथम सर्वजनसंवेद्य वाच्य अर्थ एवं द्वितीय सहृदयप्रतीतिप्रमाणक प्रतीयमान अर्थ अथवा व्यङ्ग्य अर्थ। वाच्यार्थ काव्य की रमणीयता क अधिष्ठान है उसका हेतु नहीं। काव्य के चमत्कार की दृष्टि से इसका इतना ही महत्त्व है जितना कि भव्य भवन के निर्माण के लिये आधारभूमि का होता है। वाच्य अर्थ को शब्द-अर्थ के नियमों के ज्ञानमात्र से, कोश-व्याकरणादि के परिचय रखने मात्र से प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है और व्यङ्ग्यार्थ को काव्यार्थ के तत्त्वज्ञ ही, अर्थात् सहृदयजन ही जान सकते हैं। जब सहृदयजन किसी काव्य की प्रसंशा करते हैं तो अवश्य ही उस काव्य में कोई विशेष अर्थ होता है, जो कि अन्य वैदिक और लौकिक वक्यों से उसका व्यावर्तन करता है। वही सहृदयश्लाघ्य विशेष अर्थ उस काव्य का प्राण है, वही चमत्कार का जनक है। ध्वनिकार इसी विशिष्ट अर्थ को प्रतीयमान अर्थ अथवा व्यङ्ग्य अर्थ अथवा काव्य का आत्मतत्त्व कहते हैं। काव्यास्वाद के अनन्तर विभागबुद्धि के द्वारा निरूपण करने पर काव्य में दो अर्थों की स्फुट प्रतीति होती है- प्रथम वाच्यार्थ एवं द्वितीय व्यङ्ग्यार्थ-

"योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः।

वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदाबुभौ स्मृतौ॥"[37]

---

[36] *ध्वन्यालोक*,१.१३

[37] *ध्वन्यालोक*, १.२

अर्थात् सहृदय जनों के द्वारा प्रशंसनीय जो अर्थ *'काव्य के आत्मतत्त्व'* के रूप में व्यस्थित है उसके वाच्य और प्रतीयमान नाम के दो भेद माने गये हैं।

त्रिविध व्यङ्ग्य-

आनन्दवर्द्धन ने त्रिविध व्यङ्ग्य स्वीकार किया है- वस्तुरूप, अलंकाररूप, तथा रसादिरूप।

लोचनकार अभिनवगुप्त ने वस्तु तथा अलंकार की अपेक्षा रसादि रूप व्यङ्ग्य को ही काव्यात्मा स्वीकार किया है तथा रसादि ध्वनि का वैशिष्ट्य दिखाने के अभिप्राय से इस त्रिविध व्यङ्ग्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

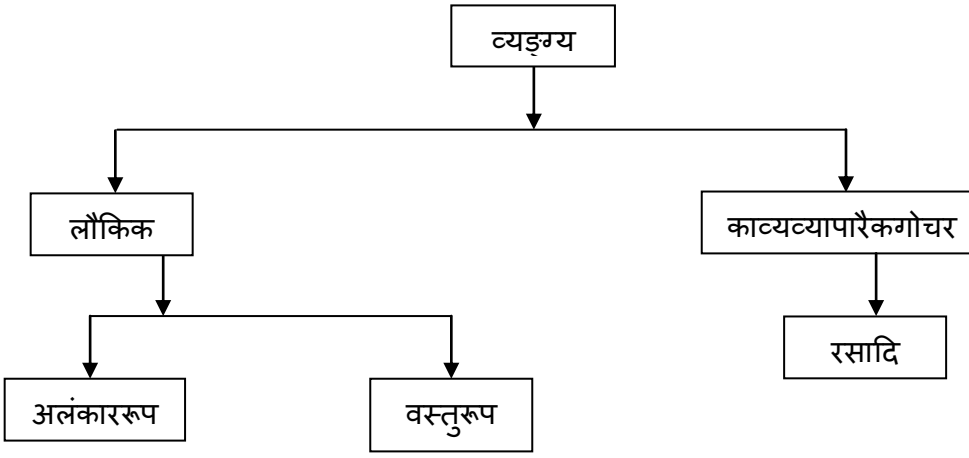

"तेन रस एव वस्तुत आत्मा, वस्त्वलङ्कारध्वनी तु सर्वथा रसं प्रति पर्यवस्येते इति वाच्यादुत्कृष्टौ तावित्यभिप्रायेण 'ध्वनिः काव्यस्यात्मे'ति सामान्येनोक्तम्।"[38]

अर्थात् रस ही वस्तुतः आत्मा है, वस्तुध्वनि और अलंकारध्वनि सर्वथा रस के प्रति पर्यवसित होते हैं अतः वे वाच्य से उत्कृष्ट हैं। इस अभिप्राय से *'ध्वनि काव्य का आत्मा है'* यह सामान्य रूप कहा गया है।

वस्तु व्यङ्ग्य एवम् अलंकार व्यङ्ग्य वाच्यत्व की अवस्था में भी रह सकता है, यही इसकी अलौकिकता का कारण है। उपमा आदि अलंकार व्यङ्ग्य को *"इव"* आदि सादृश्य शब्दों के द्वारा वाच्यमुखेन भी कहा जा सकता है। अलंकार व्यङ्ग्य होने पर प्रधानता के कारण अलंकार्य हो जाता है, किन्तु फिर भी उसे *ब्राह्मणश्रमणन्याय*[39] से अलंकार्य न कहकर अलंकार ही कहा जाता है।

रसादि रूप व्यङ्ग्य कभी भी स्वशब्दवाच्य नहीं हो सकता, उसकी प्रतीति मात्र व्यञ्जनाव्यापार से होती है। उसके रस का आनन्द मात्र काव्य में ही सम्भव है। यही उसकी अलौकिकता है। वाच्य से व्यङ्ग्य की अत्यन्त विलक्षणता की सिद्धि हेतु आनन्दवर्द्धन वस्तु व्यङ्ग्य के ऐसे उदाहरण [40](निषेधरूप, विधिरूप, उभयरूप) प्रस्तुत करते हैं जिनमें वाच्य और व्यङ्ग्य परस्पर विरोधी स्थिति में हैं अर्थात् यदि वाच्य विधि रूप है तो व्यङ्ग्य निषेधरूप और यदि वाच्य निषेधरूप है तो व्यङ्ग्य विधिरूप। विधि तथा निषेध की परस्पर विरोधी होने के कारण वाच्य एवं व्यङ्ग्य अर्थों का पारस्परिक भेद स्फुट रूप से परिलक्षित हो जाता है। वस्तुतः इस प्रकार के उदाहरणों को मात्र प्रतीयमान अर्थ की सत्तासिद्धि हेतु ही प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि ध्वनिनिरूपण से पूर्व व्यङ्ग्यार्थ की सत्ता सिद्ध करना आवश्यक है।

---

[38] *ध्वन्यालोक*, १.५ पर लोचन

[39] अर्थात् ब्राह्मण होते हुए बौद्ध-दीक्षा लेने से श्रमण भी है।

[40] *ध्वन्यालोक*, १.४ का वृत्तिभाग

ध्वनिकार ने कहा है कि रसादिरूप व्यङ्ग्य *'वाच्यार्थसामर्थ्याक्षिप्त"*[41] अर्थात् वाच्य के सामर्थ्य से आक्षिप्त होकर प्रकाशित होता है। इस विशेषण से व्यङ्ग्य और वाच्य का भेद स्पष्ट हो जाता है। व्यङ्ग्य वाच्य के सामर्थ्य से आक्षिप्त होता है।

काव्य में व्यङ्ग्यार्थ का महत्त्व-

काव्य विमर्श-शक्ति अथवा स्वातंत्र्य-शक्ति का ही मनोहारी प्रतिफलन है। स्वातन्त्र्य का अर्थ है इच्छा अथवा सिसृक्षा। कवि प्रजापति की भाँति अपनी काव्य-सृष्टि को मनोवाँछित रूप देता है-

"अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।

यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥"[42]

सुकवि स्वतन्त्र रूप से काव्य में अचेतन भी भावों को चेतन की भाँति और चेतन को अचेतन की भाँति यथेष्ट व्यवहार करता है।

काव्य कवि के भावों, विचारों को सम्प्रेषणीय बनाने का एक माध्यम है। फलतः वह ध्वन्यार्थ काव्य के कलेवर और विन्यास में ही समाहित रहता है। जिस प्रकार किसी मदनाविष्ट रमणी के सुन्दर अवयवों से लावण्य फूटता हुआ प्रतीत होता है उसी प्रकार यह व्यङ्ग्य अर्थ भी काव्य से व्यक्त होता है। परन्तु जिस प्रकार एक अंगना का लावण्य उसके शरीर अवयवों में समाहित होता हुआ भी उससे नितान्त भिन्न है उसी प्रकार यह व्यङ्ग्यार्थ भी काव्य के प्रसिद्ध अंगों से झलकता हुआ भी अन्य ही पदार्थ है-

"प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।

यत्तत्प्रसिद्धा प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु॥"[43]

इसके साथ ही जिस प्रकार रमणी का लावण्य उसके अवयवों से ही व्यक्त होता है, अवयव ही उस लावण्य की प्रतीति के साधन हैं, उसी प्रकार

---

[41] वही, १.४ का वृत्तिभाग

[42] वही, ३.४२ का वृत्तिभाग

[43] ध्वन्यालोक, १.४

काव्य भी ध्वन्यार्थ का साधन है। इस आधार पर काव्य को भी *'ध्वनि'* संज्ञा प्रदान की जाती है-

"व्यंक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।"[44]

यह व्यङ्ग्यार्थ ही काव्य का आत्मतत्त्व माना गया है। काव्यगत समस्त चमत्कार इसी से सम्बन्धित हैं। इस अर्थ की अपेक्षा काव्य के शब्दार्थ गौण हैं।[45] कभी यह रस स्वरूप होता है, कभी वस्तु और अलंकार स्वरूप। रस रूप में यह ध्वनि की आत्मा माना जाता है।[46]

ध्वनिसम्प्रदाय के अनुसार काव्य का वर्गीकरण-

ध्वनिसिद्धान्त व्यञ्जनावृत्ति एवं व्यङ्ग्य अर्थ पर आधारित है। ध्वनिवादी आचार्य इसी दृष्टि से काव्य के विभिन्न पक्षों का निर्धारण करते हैं। इसी वाच्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थ की तारतमिक उच्चावचता के आधार पर और व्यङ्ग्य की प्रधानता, अप्रधानता तथा अस्फुटता के अनुसार आनन्दवर्द्धन ने काव्य के तीन भेद स्वीकार किये हैं-

१. ध्वनिकाव्य

२. गुणीभूत व्यङ्ग्य काव्य

३. चित्रकाव्य

ध्वनि अथवा उत्तम काव्य -

जिस काव्य में प्रतीयमान (व्यङ्ग्य) अर्थ की प्रधानता रहती है, उसए ध्वनिकाव्य कहते है, यही उत्तम काव्य है। बुधजनों का कथन है जहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यङ्ग्यार्थ का चमत्कार प्रधान अर्थात् अतिशय हो, वही ध्वनिकाव्य है-

"व्यङ्ग्यप्रधाने हि ध्वनिः।"[47]

---

[44] वही, १.१३

[45] वही, १.१३

[46] वही, २.२

[47] *ध्वन्यालोक*, १.१३

"इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः॥"[48]

"वाच्यातिशयिने व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम्।"[49]

जहाँ वाचक शब्द अपने अर्थ को तथा वाच्य अर्थ स्वयं को गौण बनाकर प्रतीयमान अर्थ की व्यञ्जना करते हैं, ऐसे विशिष्ट काव्य को बुधजनों ने ध्वनि कहा है।[50]

गुणीभूत व्यङ्ग्य अथवा मध्यम काव्य -

जहाँ व्यङ्ग्य का सम्बन्ध होने पर वाच्य का चारुत्व प्रकृष्ट होता है अर्थात् व्यङ्ग्यार्थ का चमत्कार वाच्यार्थ के चमत्कार की अपेक्षा गौण अर्थात् न्यून हो, वहाँ गुणीभूत व्यङ्ग्य नामक मध्यम काव्य का प्रकार होता है।

चित्र अथवा अवर काव्य-

काव्य में एक स्थिति ऐसी भी होती है जहाँ व्यङ्ग्य या प्रतीयमान अर्थ नितान्त तिरोहित हो जाता है। वहाँ वह प्रधान रहना तो दूर गौण होकर भी भी विद्यमान नहीं देखा जाता। व्यङ्ग्यार्थ वहाँ अस्फुट रूप से विद्यमान रहता है।

ध्वनि-भेद-

काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है।[51] कविता साभिप्राय होती है। शाब्दिक अर्थ से परे हटकर नवीन अभिप्राय एवं अर्थ की उद्भावना कविता का विषय है। कविता मानवमन को संकुचन से विस्तार की ओर ले जाती है। काव्यसृजन और काव्यास्वाद दोनों अवस्थाएँ वस्तुतः व्यष्टि से समष्टि तक की यात्रा हैं।

---

[48] *काव्यप्रकाश*, १.४

[49] *साहित्यदर्पण*, ४.१

[50] *ध्वन्यालोक*,१.१३

[51] *काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध*, पृ.३७-३८

काव्य *सहृदय*[52] के मनोमुकुर के विशदीकरण और तन्मयीभवन का माध्यम है। काव्य मानव-हृदय को स्वार्थ और क्षुद्रता के संकुचन से उठाकर समता के भावभूमि पर ले जाता है, जहाँ इस चराचर जगत् की वास्तविक अनुभूतियों से साक्षात्कार होता है। इस स्तर पर सहृदय विगलित वेद्यान्तर सम्पर्कशून्य हो जाता है। काव्य हृदय की मुक्तावस्था है। काव्य लौकिक भी होता है लोकोत्तर भी। महर्षि वाल्मीकि के हृदय में क्रौंच वध के फलस्वरूप क्रौंच की व्याकुलता देखकर जो शोक जगा वह अलौकिक था। महर्षि ने उस शोक से मुक्ति हेतु श्लोकों के रूप में रामायण का प्रणयन किया, यह लौकिक है। महर्षि का शोक[53] व्यक्तिगत नहीं अपितु जीव-मात्र का शोक था। प्राणिमात्र के प्रति सहानुभूति के कारण महर्षि के हृदय में शोक का उदय हुआ तदन्तर क्रौंच और महर्षि दोनों का हृदय-स्तर पर संवाद हुआ, दोनों समान धरातल पर उपस्थापित हुए, महर्षि का तन्मयीभवन हुआ और श्लोक की धारा फूट पड़ी।

मुक्त हृदय की साधना हेतु कवि की वाणी उपयुक्त शब्दों का विधान कर काव्य की सर्जना करती है। कविता के स्तर पर मात्र व्याकरण सम्मत और कोशगत शब्द और अर्थ ही पर्याप्त नही है अपितु कविता व्याकरण के शब्द और अर्थ के सिद्ध सम्बन्ध[54] को आक्रान्त करते हुए उससे परे तक यात्रा करती है। वाच्यार्थ को व्यक्ति मात्र कुछ व्याकरणिक नियमों एवं कोशगत अर्थों के ज्ञान द्वारा जान सकता है पर व्यङ्ग्यार्थ को काव्यार्थ के तत्त्वज्ञ अर्थात् सहृदयजन ही जान सकते हैं।[55] भावना के मूर्तिकरण के कारण काव्य-भाषा में जाति संकेतक शब्दों की अपेक्षा विशेष-रूप-व्यापार-सूचक शब्दों की आवश्यकता होती है। अर्थात् काव्य-भाषा का स्तर

---

[52] येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद्विशदीभूते मनोमुकुरे
वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते स्वहृदय संवादभाजः
सहृदयाः, *ध्वन्यालोक*, १.१ पर लोचन,

[53] काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौंचद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥, *ध्वन्यालोक*, १.५

[54] सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे, *महाभाष्य*(पस्पशाह्निक)

[55] *ध्वन्यालोक*, १.१ का वृत्तिभाग

सामान्यभाषा तथा कोशग्रन्थों से सूक्ष्म है। काव्य में कवि जब किसी शास्त्रीय शब्दावली का समायोजन करता है तब वह कुछ सामान्य दशाओं का प्रयोग कर अपनी भाषा को मार्मिक व ग्रहणीय बना देता है। वर्ण-विन्यास व छन्दोविधान भी काव्यभाषा की अनिवार्य विशेषताएं हैं, जो उसको अन्य शास्त्रों से पृथक् करती हैं। भाषा का प्रयोग सभी क्षेत्रों में होता है चाहे वह सामान्य लोक-व्यवहार हो, शास्त्र हो अथवा काव्य हो। परन्तु लोक-व्यवहार तथा अन्य शास्त्रों में शब्द-प्रयोग का लक्ष्य मात्र व्यवहार होता है जबकि काव्य में शब्दों के प्रयोग का लक्ष्य एक विशिष्ट चिन्तन की अनुभूति और आस्वाद होता है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्द्धन स्पष्ट कहते हैं कि यदि 'सामान्य' अर्थ को ही दृष्टिगत रखते हुए काव्य-सृजन होता, तो उसमें नवीन क्या होता?[56] अर्थात् विशिष्ट अर्थ का बोध कराने की क्षमता से सम्पन्न शब्द ही काव्य के क्षेत्र का प्रभावी शब्द बन सकता है। काव्य में शब्द का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयव भी बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जिस प्रभाव का उद्रेक एक शब्द से होता है, उसी प्रभाव का उद्रेक उसके पर्यायवाची से सम्भव नहीं है। शब्द की इसी विशेषता को दृष्टिगत रखते हुए आनन्दवर्द्धन कहते हैं कि जो प्रभाव या चारुता शब्दान्तर से प्रकाश्य न होकर उसी शब्द से हो वह *'ध्वनि'* है।[57]

ध्वनिसिद्धान्त के प्रस्थापक आचार्य आनन्दवर्द्धन हैं। इन्होंने ध्वन्यालोक का प्रणयन कर ध्वनिसिद्धान्त की स्थापना की। आनन्दवर्द्धन ने ध्वनि को काव्यात्मभूत तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठापित करते हुए बताया कि प्राचीन काव्याचार्य[58] भी इसे यह पद प्रदान करते रहे हैं। उन्होंने वैयाकरणों का स्मरण अति आदर के साथ अनेकत्र किया है।[59] वैयाकरणों के

---

[56] यतो यदि सामान्य मात्रमाश्रित्य काव्यं प्रवर्तते किं कृतस्तर्हि महाकविनिबध्यमानानां काव्यार्थानामतिशयः॥, *ध्वन्यालोक*,४.७

[57] उत्तयन्तरेणाशक्यं यत्तच्चारुत्वं प्रकाशयन्।
शब्दो व्यञ्जकतां विभ्रद् ध्वन्युक्तेर्विषयीभवेत्॥, *ध्वन्यालोक*, १.१५

[58] काव्यस्यात्मा ध्वानिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः।, *वही*,१.१

[59] प्रथमें विद्वांसो हि वैयाकरणाः,व्याकारणामूलत्वात्सर्वविद्यानाम्, *वही*, १.१३ का वृतिभाग

लिये '*बुधैः*' और '*सूरिभिः*' शब्दों का भी प्रयोग किया है। इस सिद्धान्त का स्रोत वैयाकरणों के स्फोट सिद्धान्त में निहित माना जाता है।[60] ध्वनि सम्बन्धी नाना विप्रतिप्रत्तियों का निराकरण करते हुए सहृदयजनों के मनःप्रसादन के लिये ध्वनिस्वरूप का सर्वप्रथम निरूपण आनन्दवर्द्धन ने ही किया। तदन्तर आचार्य अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक पर '*लोचन*' नामक टीका लिखकर उसके सारतत्त्व को व्याख्यायित किया। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने ध्वनि विरोधियों का निराकरण करते हुए ध्वन्यालोक का सारा तत्त्वांश बड़े सुन्दर रूप में अपने ग्रन्थ में उपस्थापित किया है। इसीलिये मम्मटाचार्य को 'ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्य' कहा जाता है।[61]

ध्वनि काव्य की आत्मा है। सहृदयजनों के लिये प्रशंसनीय जो अर्थ 'काव्य की आत्मा' के रूप में व्यवस्थित है, उसके वाच्य और प्रतीयमान दो भेद होते हैं।[62] वाच्य अर्थ उपमा आदि अलंकारों का रूप लेकर सहृदयश्लाघ्य होता है प्रतीयमान अर्थ महाकवियों की वाणी में उपस्थित रहता है। यह चमत्कारी अर्थ, वाच्यार्थ और वाचक शब्द तथा अलंकारादि में रहता हुआ भी उन सबसे भिन्न भासित होता है, जैसे सुन्दरी ललना के प्रसिद्ध अवयवों से भिन्न लावण्य। वह प्रतीयमान अर्थ वाच्य की सामर्थ्य से वस्तुरूप, अलंकाररूप और रसरूप होता है। रसरूप अर्थात् रसध्वनि काव्य का परमतत्त्व है। वस्तुध्वनि में किसी तथ्य की व्यंजना की जाती है। अलंकारध्वनि में अलंकार बाह्य शोभा न रहकर अलंकार्य या काव्य का वर्ण्य-विषय बन जाता है। इसमें प्रतीयमान अर्थ की अभिव्यक्ति किसी अलंकार के रूप में होती है। रसध्वनि के अन्तर्गत मात्र नव रसों की ही परिगणना नहीं करते अपितु भाव, भावाभास, रसाभास, भावसंधि, भावशान्ति, भावोदय, तथा भावशबलता का भी समावेश होता है। आचार्य अभिनवगुप्त भी ध्वनि को काव्य की आत्मा मानते हैं, परन्तु काव्य की

---

[60] बुधैर्वैयाकरणैः प्रधानभूतस्फोटरूपव्यङ्ग्यव्यञ्जकस्य शब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहारः कृतः॥, *काव्यप्रकाश*,१.४.२

[61] *काव्यप्रकाश*,विश्वेश्वर, भूमिका, पृ.७४

[62] योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः।
वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदबुभौ स्मृतौ॥, *ध्वन्यालोक*, १.२

आत्मा मूलतः रसध्वनि को मानते हैं। यद्यपि ध्वनि वस्तु अलंकार और रस रूप में तीन प्रकार की होती है, पर काव्यात्मा तो रसध्वनि ही है।[63] आनंदवर्द्धन ने ध्वनि का लक्षण किया है कि जब अर्थ स्वयं को या शब्द अपने अर्थ को गौण करके विशेष अर्थ व्यक्त करे तो उस प्रतीयमान अर्थ को विद्वान् ध्वनि कहते हैं।[64]

आचार्य अभिनवगुप्त का मत है कि वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चारु होता है।[65] काव्य में *'शब्दार्थगुणालंकारसंयुक्तरसात्मकता'* की चारुता का होना आवश्यक है, क्योंकि इसके विना *'गंगायां घोषः'* जैसी नीरस उक्तियों में भी काव्यत्व मानना पड़ेगा। काव्य रस के साथ ही जीवित रहता है उसके अभाव में वह काव्य की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सकता।

अभिनवगुप्त ने शब्द, अर्थ और शब्द के व्यापार तीनों को ही ध्वनि मानकर, व्यंग्य काव्य को भी ध्वनि की परिधि में लेते हुए, ध्वनि का प्रयोग पाँच सम्भावित अर्थों में प्रस्तुत किया है।

1. *ध्वनयति यः व्यञ्जकः शब्दः स ध्वनिः।*
2. *ध्वनति ध्वनयति वा यः सः व्यञ्जकोऽर्थः ध्वनिः।*
3. *ध्वन्यते इति ध्वनिः।*
4. जिसके द्वारा ध्वनित किया जाय उसे भी ध्वनि कहते हैं। इसके अन्तर्गत शब्द और अर्थ के व्यापार अर्थात् अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना की शक्तियाँ आती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जिस शब्द-व्यापार के द्वारा ध्वनि उत्पन्न हो वह भी ध्वनि है।
5. *ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः।*[66]

ध्वनि परम्परा में मूल पाँच भेद हैं। दो लक्षणावृत्ति पर आधारित भेद हैं तीन भेद अभिधावृत्ति पर आश्रित हैं। आनन्दवर्द्धन ने लक्षणामूला ध्वनि को अविवक्षित वाच्य एवम् अभिधामूला ध्वनि को

---

[63] चारुत्वप्रतीतिस्तर्हि काव्यस्यात्मा स्यात्।, *वही*, १.१३ पर लोचन

[64] यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यंक्तः काव्यविशेषो ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥, *वही*, १.१३

[65] सुखावहा इति चारुत्वहेतुः, *वही*, ३.३५ पर लोचन

[66] *वही*, १.१३ पर लोचन

विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि कहा है।[67] लक्षणामूला ध्वनि के अर्थान्तरसंकमितवाच्य और अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य दो भेद हैं एवम् अभिधामूला ध्वनि के असंलक्ष्यक्रम और संलक्ष्यक्रम दो भेद है। संलक्ष्यक्रम रसध्वनि के रूप में तथा संलक्ष्यक्रम ध्वनि वस्तुध्वनि और अलंकारध्वनि के रूप में पुनः दो भागों में विभक्त है।

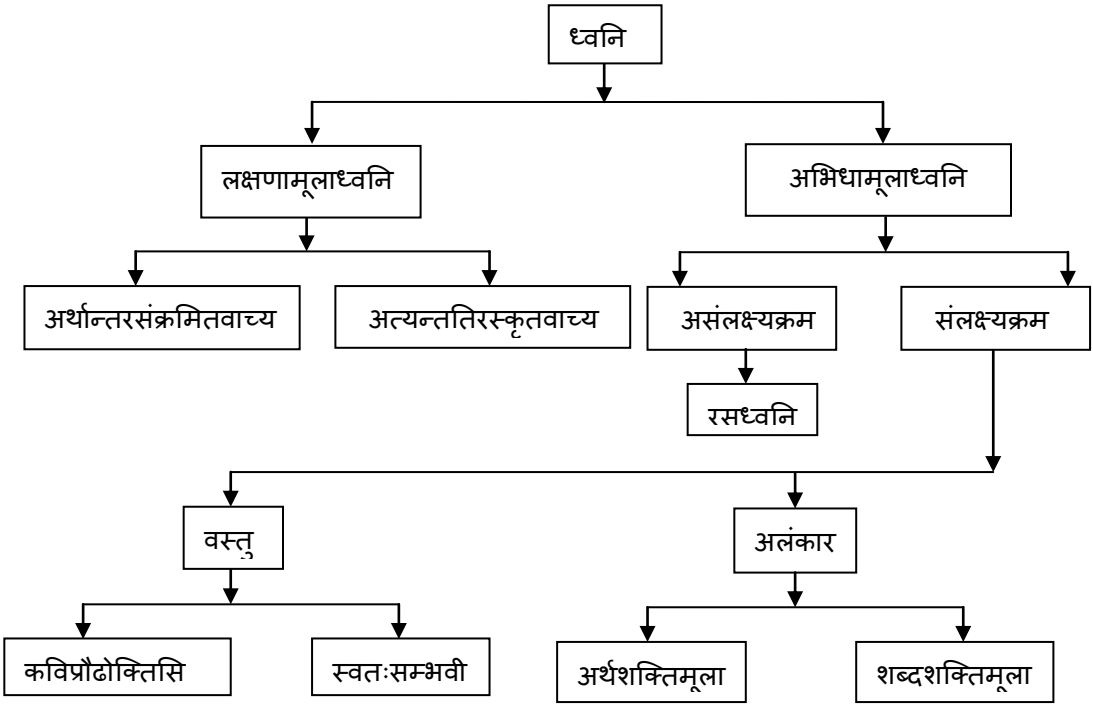

अविवक्षितवाच्यध्वनि (लक्षणामूला)-

अविवक्षितवाच्य से तात्पर्य है कि इसमें वाच्यार्थ का कथन अभीष्ट नहीं होता, अर्थात् प्रसंग में वाच्यार्थ अनुपयुक्त रहता है, अतः लक्ष्यार्थ लिया जाता है और फिर लक्षणा का व्यङ्ग्य प्रयोजन ही प्रधान रहता है। इस प्रकार अर्थ की तीन श्रेणियाँ बनती हैं- वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य।

---

[67] *वही*, १.१३ का वृत्तिभाग

अविवक्षितवाच्य ध्वनि के दो भेद हैं- अर्थान्तरसंक्रमित ध्वनि एवम् अत्यन्ततिरस्कृतध्वनि।[68]

अर्थान्तरसंक्रमितध्वनि-

जो अर्थ उपपन्न होता हुआ भी, उतने ही अंश में उपयोग के न होने से धर्मान्तर के मिल जाने के कारण, दूसरे जैसा ज्ञात होता हुआ, धर्मी के अनुगत होने की स्थिति में सूत्र की भाँति होता है, वह रूपान्तर-परिणत अर्थात् अर्थान्तरसंक्रमित कहा जाता है।

अन्यन्ततिरस्कृत ध्वनि-

जो अर्थ अनुपपन्न होता हुआ उपायमान होने के कारण दूसरे अर्थ की प्रतीति उत्पन्न करके जैसे पलायन कर जाता है, वह अत्यन्ततिरस्कृत कहा जाता है।

विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि-

यह अभिधामूला व्यंजना से आये हुए व्यंग्यार्थ की प्रधानता वाली ध्वनि है, जिसमें वाच्यार्थ विवक्षित रहता है, फिर भी अन्य अर्थ (व्यंग्यार्थ) की प्रधानता रहती है। इसमें वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ परायण होकर ही आता है, अतः वाच्य गौण ही रहता है। जब यह व्यङ्ग्य रसादि व्यङ्ग्य की प्रधानता में रहता है तब इसे असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि कहते हैं, परन्तु यदि वस्तु या अलंकार व्यङ्ग्य की प्रधानता हो तो संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि होती है। विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि के दो भेद हैं- असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि एवम् संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि।

असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि-

यह रसादिध्वनि है जिसमें वाच्यार्थ व्यञ्जक होता है। रसादि व्यङ्ग्य रूप में आते हैं। वाच्य से व्यङ्ग्य तक पहुँचने में इतनी शीघ्रता होती है कि उनके मध्य क्रम स्पष्ट ही नहीं होता, जैसे शतकमलपत्रभेदन के क्रम में क्रम होते हुए भी वह लक्षित नही होता। सहृदय रसावेश में आ जाता है और

---

[68] *ध्वन्यालोक*, २.१

तत्काल वाच्यार्थ तिरोहित सा हो जाता है एवं व्यङ्ग्य रसादि उसे आविष्ट कर देते हैं।

रस, भाव, रसाभाव व भावाभाव, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि, भावशबलतायें जहाँ अङ्गी-प्रधान रूप से सहृदयों के चर्वणा का विषय हों, वहाँ इस विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि का असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य रूप प्रथम भेद होता है।

रसध्वनि-

यह आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा किया गया विभाजन है। उन्होंने ध्वनिकार से एक कदम आगे बढ़ते हुये रसध्वनि का प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार गन्धयोजना की कला के जानकार लोग एक रस के आस्वाद से व्याप्त सुगन्ध के उपभोग में भी कहते हैं कि यह सुगन्ध मांसी (विशेष सुगन्धित पदार्थ) आदि से तैयार है। रसध्वनि तो वही है जो यहाँ मुख्य रूप से विभाव, अनुभाव, व्यभिचारीभाव के संयोग से उत्पन्न स्थायीभाव की प्रतिपत्ति या ज्ञान वाले ज्ञाता या सहृदय का स्थायी के अंश की चर्वणा के कारण ही प्रकृष्ट आस्वाद है।

'रस का उदय केवल उसी व्यक्ति में हो सकता है जो अपने पूर्व जन्मों में ऐसा अनुभव कर चुका है जो उस को सौन्दर्य-सम्बन्धी संवेदन-शीलता प्रदान करता है, जो उसको सहृदय बनाता है। उसी व्यक्ति में एक पूर्णतया अद्भुत भावात्मक अनुभव के रूप में रस का उदय होता है, जिसकी तुलना केवल परब्रह्मज्ञान के आनन्द से की जा सकती है, जो स्वयं एक अलौकिक आनन्द है।[69] रसादि रूप अर्थ वाच्य के साथ उसी के जैसा प्रतीत होता है और वह अङ्गी (प्रधान) रूप से प्रतीत होता हुआ ध्वनि का आत्मभूत (स्वरूप) तत्त्व है-

"रसादिरर्थो हि सहेव वाच्येनावभासते। स चाङ्गित्वेनाभासमानोध्वनेरात्मा।"[70]

---

[69] ए.बी. कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. ४८८-४८९

[70] ध्वन्यालोक, २.३ का वृत्तिभाग।

संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि-

इसमे वाच्य और व्यङ्ग्य का क्रम उसी प्रकार लक्षित होता है जिस प्रकार घण्टा के पश्चात् होने वाले अनुरणन का। इसीलिये आनन्दवर्द्धन संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य को *'अनुस्वासन्निभः'* कहते हैं। इसके दो भेद हैं- शब्दशक्तिमूल एवम् अर्थशक्तिमूल।

शब्दशक्तिमूलध्वनि- जहाँ शब्द से अनुक्त अलंकार आक्षेप-सामर्थ्य से ही शब्दशक्ति द्वारा प्रकाशित होता है वह 'शब्दशक्तिमूलध्वनि' है।

अर्थशक्तिमूलध्वनि-

जहाँ अर्थ शब्दव्यापार के विना ही अपनी सामर्थ्य से अर्थान्तर को अभिव्यक्त करता है, वह अर्थशक्त्युद्भव नामक ध्वनि है।

लोचनकार अभिनवगुप्त ने आनन्दवर्द्धन के मन्तव्य को प्रकट करते हुए ध्वनि के ३५ मुख्य भेद गिनाये हैं। उन्होंने द्वितीय उद्योत की ३१वीं कारिका तथा तृतीय उद्योत की ४३वीं कारिका की व्याख्या के प्रसंग में ध्वनि के प्रभेदों को गिनाया है-

अविवक्षितवाच्यो विवक्षिततान्यपरवाच्य इति द्वौ मूलभेदौ। आद्यस्य द्वौ भेदौ-अत्यन्ततिरस्कृतवाच्योऽर्थान्तरसंक्रमितवाच्यश्च।द्वितीयश्च द्वौ भेदौ- अलक्ष्यक्रमोऽनुरणरूपश्च। प्रथमोऽनन्तभेदः। द्वितीयो द्विविधः- शब्दशक्तिमूलोऽर्थशक्तिमूलश्च। पश्चिमस्त्रिविधः- कविप्रौढोक्तिकृतशरीरः कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिकृतशरीरः स्वतस्सम्भवी च। ते च प्रत्येकं व्यङ्ग्यव्यञ्जकयोरुक्तभेदनयेन चतुर्धेति द्वादशविधोऽर्थशक्तिमूलः। आद्याश्चत्वारो भेदा इति षोडश मुख्य भेदाः। ते च पदवाक्यप्रकाशत्वेन प्रत्येकं द्विधा वक्ष्यन्ते। अलक्ष्यक्रमस्य तु वर्णपदवाक्यसंघटनाप्रबन्धप्रकाश्यत्वेनपञ्चत्रिंशद्भेदाः।"[71]

अर्थात् ध्वनि के अविवक्षितवाच्य और विवक्षितान्यपरवाच ये दो भेद हैं। उनमें से प्रथम अविवक्षितवाच्य के अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य और अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य ये दो भेद होते हैं। द्वितीय अर्थात् विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि के असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य और संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ये दो भेद होते हैं। इनमें से प्रथम असंलक्ष्यक्रम (रसादिध्वनि) के अनन्त भेद

[71] ध्वन्यालोक ,२.३१ पर लोचन।

हैं। इसलिये वह सब मिलकर एक ही माना जाता है। दूसरे अर्थात् संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य के शब्दशक्तिमूल और अर्थशक्तिमूल इस प्रकार दो भेद होते हैं। इनमे से अन्तिम अर्थात् अर्थशक्तिमूल ध्वनि के अवतःसम्भवी, कविप्रौढोक्तिसिद्द तथा कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्ध ये तीन भेद होते हैं। इन तीनों में से प्रत्येक व्यङ्ग्य और व्यञ्जक दोनों में उक्तभेद (वस्तु और अलंकार) नीति से चार भ्द होकर कुल बारह प्रकार की अर्थशक्त्युद्भव ध्वनि होती है। इन बारह भेदों में प्रथम चार भेद अर्थात् अविवक्षितवाच्य के दो भेद, तीसरा असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य और चौथा शब्दशक्त्युत्थ भेद मिला देने से बारह और चार मिलाकर सोलह भेद हुए। यह सब पदगत और वाक्यगत होने से दो प्रकार के होकर ३२ भेद हुए। असंलक्ष्यक्रम पद और वाक्य के अतिरिक्त वर्ण, संघटना तथा प्रबन्ध में भी प्रकाश्य होने से उसके तीन भेद जुड़कर ध्वनि के कुल ३५ भेद हो जाते हैं।

अभिनव गुप्त के अनुसार ध्वनि तालिका-

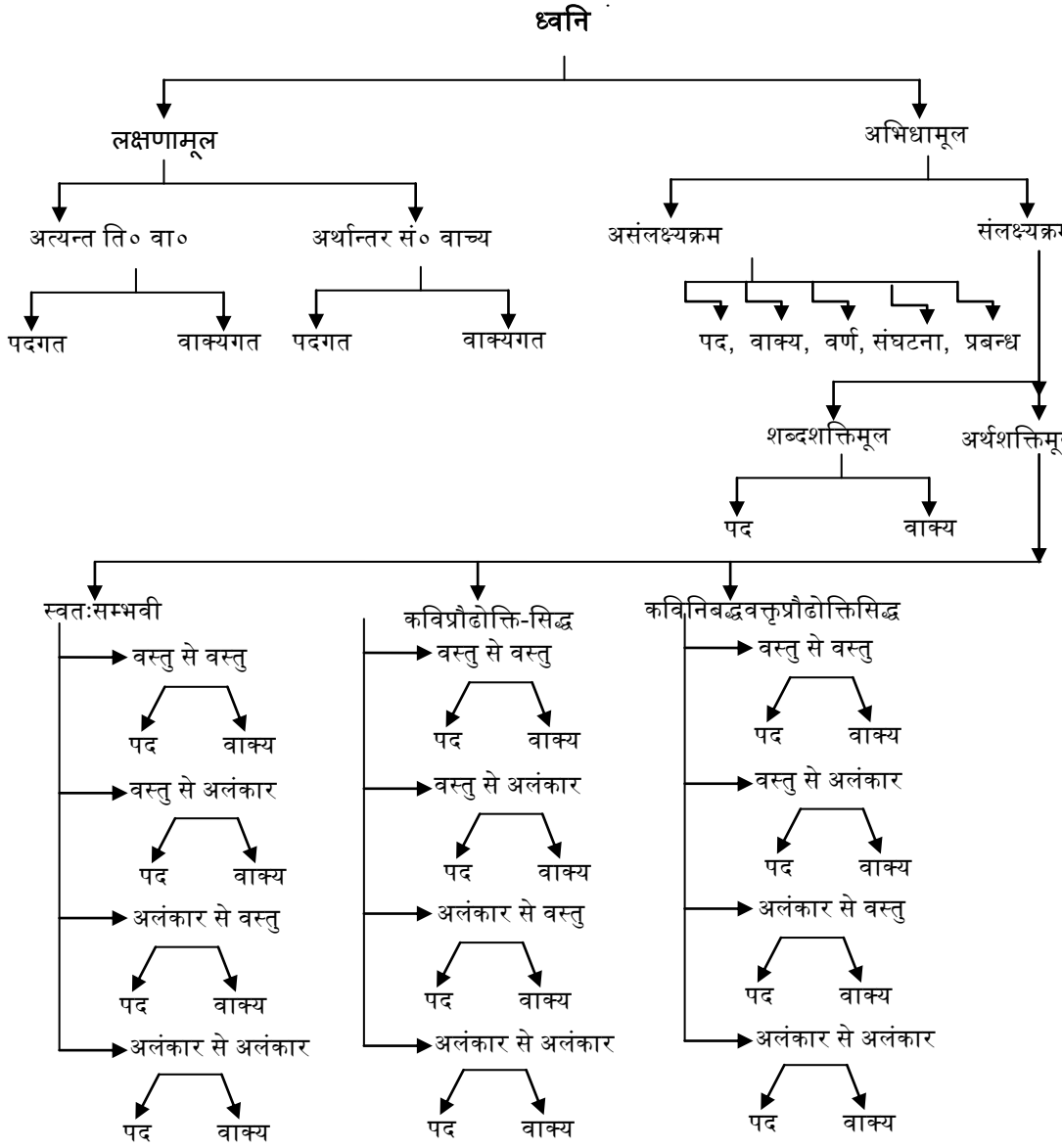

वस्तुतः काव्य एक विशिष्ट अनुभूति है। यही अनुभूति काव्य का सृजन भी है संहार भी। अनुभूति से कवि रचता है, सृजन करता है और पाठक अनुभूति के माध्यम से उसका रसास्वादन करता है, यही रसास्वादन संहार है। 'इस अनुभूति की विशेषता ही काव्य का आदि भी है और अन्त भी; प्रेरणा भी है प्रयोजन भी।'[72] भाषा, छन्द, बिम्ब आदि के माध्यम से कवि स्वानुभूति को सहृदय[73] की अनुभूतिगम्य बनाता है।

आचार्य अभिनवगुप्त के 'लोचन' टीका ने ध्वनिसिद्धान्त को अभूतपूर्व विस्तार दिया और यह सिद्धान्त मात्र संस्कृत काव्यशास्त्रियों और विद्वानों में ही नहीं अपितु समस्त भारतीय भाषाओं के विद्वानों के मध्य समादृत बना। वस्तुतः संस्कृत काव्यशास्त्र भारतीय काव्यशास्त्र का आधार है। ध्वनि सिद्धान्त के संस्कृतेतर भाषाओं में भी अनुयायी आचार्य हुये हैं। अभिनवगुप्त द्वारा प्रतिपादित रसध्वनि बहुसमादृत रही है। इसका प्रभाव संस्कृतेतर भारतीय भाषाओं में सहज ही देखा जा सकता है। हिन्दी, मराठी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, बांग्ला एवं गुजराती आदि भाषाओं में काव्यशास्त्रीय पठन-पाठन एवं मीमांसा संस्कृत काव्यशास्त्र को ही आधार बनाकर होती है। इन सभी भाषाओं में प्रत्यक्ष रूप से संस्कृत काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों की स्वीकृति है, ऐसा विश्वविद्यालयीय समीक्षाशास्त्र, आलोचनाशास्त्र के पाठ्यक्रम के अवलोकन से सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त इसकी पुष्टि इन भाषाओं में अनूदित संस्कृत काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों से भी होती है।

जहाँ तक ध्वनिसिद्धान्त के स्वीकरण एवं अस्वीकरण की बात है। तो चूँकि साहित्य में सर्जन प्रक्रिया, अभिव्यञ्जन प्रक्रिया और ग्रहण प्रक्रिया में एक स्तर पर जाकर कालिक एवम् देशिक विभेद समाप्त हो जाता है। सहृदय संवाद के स्तर पर हृदय एक धरातल पर आसीन होता है। अतः

---

[72] *काव्यार्थ चिन्तन*, पृ.१८७

[73] येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद्विशदीभूते मनोमुकुरे
वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते स्वहृदय संवादभाजः
सहृदयाः, *ध्वन्यालोक*, लोचन, पृ.४०

इसकी तो सम्भावना ही नितान्त अनुचित है कि संस्कृतेतर भाषाओं में ध्वनि की स्वीकृति नहीं होगी। ये अलग बात है कि स्वीकृति मुखर न हो।

इस प्रकार समस्त भारतीय वाङ्गमय में ध्वनिसिद्धान्त किसी न किसी रूप में वर्तमान है। सभी भाषाओं के साहित्य में ध्वनि का स्वीकरण है। ध्वनि व्यङ्ग्य होती है। व्यञ्जकता काव्य का सार्वभौम गुण है। जहाँ-जहाँ, जिस-जिस भाषा में यह गुण विद्यमान है, ध्वनि वहाँ स्वतः विद्यमान है।

नाट्यशास्त्र एवं आचार्य अभिनवगुप्तः-

आचार्य भरत प्रणीत नाट्यशास्त्र पर यदि आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा रचित टीका 'अभिनवभारती' अथवा 'भारती' उपलब्ध न होती तो हम नाट्यविषयक विशाल साहित्य से अनभिज्ञ रहते। ऊपर बताया जा चुका है कि नाट्यशास्त्र की शिक्षा अभिनवगुप्त ने अपने गुरु भट्ट तौत से प्राप्त की थी। वर्तमान समय तक आचार्य अभिनवगुप्त की नाट्यशास्त्र पर टीका 'नाट्यवेदविवृत्ति' अथवा 'अभिनवभारती' के अतिरिक्त दूसरी कोई भी टीका विद्यमान नहीं है। शैवर्शन में 36 तत्त्व हैं अतः 'अभिनवभारती' में 36 अध्याय हैं। ये सभी अध्याय पूर्णरूप से नहीं प्राप्त होते। विभिन्न विद्वानों ने अथक परिश्रम द्वारा 'अभिनवभारती' को पूर्ण करने और विभिन्न संस्करणों द्वारा पूरे 36 अध्यायों को प्राप्त करने का प्रयास किया है, परन्तु दुर्भाग्यवश प्रयास में अपेक्षित सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है।

आज हमारे पास नाट्यशास्त्र के विषय में जानकारी का जो एकमात्र शक्तिशाली प्रमाणिक स्रोत है, वह है 'अभिनवभारती'। इसी टीका के माध्यम से हमें भारतीय 'नाट्यविद्या' की प्राचीन समृद्ध परम्पराअ का ज्ञान होता है। नाट्यशात्र चूँकि 300 ई. के आसपास की रचना मानी जाती है अतः इसे भारतीय काव्यशास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ होंने का गौरव प्राप्त है। यह आचार्य अभिनव की देन ही है कि आज हम नाट्यशास्त्र के विद्वान् टीकाकारों मातृगुप्त, उद्भट्, लोल्लट, श्रीशंकुल, भट्ट नायक, हर्ष, कीर्तिधर व नान्यदेव के विषय में जान पाते हैं। आचार्य अभिनव ने टीका में स्थान-स्थान पर इन आचार्यों के मतों का उल्लेख किया है। जिससे हमें उनके मतों के विषय में पता चलता है। दुर्भाग्य से इन आचार्यों का कोई ग्रन्थ आजतक

नहीं प्राप्त हो पाया है। परन्तु ऐसा माना जाता है कि अभिनवगुप्त के समय उनके ग्रन्थ उपलब्ध थे, जो कालान्तर में लुप्त हो गये।

'अभिनवभारती' नाट्य के सिद्धान्तों का गहन, विशद एवं सूक्ष्म विवेचन करती है। नाट्यशास्त्र के विभिन्न विषयों के सन्दर्भ में आचार्य अभिनव की अपनी तार्किक अवधारणा थी, जो कि परवर्ती काव्यशास्त्रियों द्वारा मान्य भी हुयी जैसे आचार्य अभिनवगुप्त नौकृति को नाट्य का लक्षण नहीं मानते अपितु इनके अनुसार 'नाट्यं भावानुकीर्तनम्' अर्थात् नाट्य भावों का अनुकीर्तन है। अपनी इस बात को उन्होंने बड़ी गम्भीरता, सजगता एवं सहजता से पुष्ट किया है साथ ही इसकी विस्तृत व सूक्ष्म मीमांसा भी प्रस्तुत की है। आचार्य अभिनवगुप्त सर्वशास्त्रप्रणीत आत्मस्थ विद्वान् थे अतः उनकी भाषा, शैली और विषय-विवेचन अभूतपूर्व है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने भरत के रससूत्र के विवेचन के क्रम में विभिन्न आचार्यों और उनके विचारों का उल्लेख करते हुये तथा उनका खण्डन करते हुये अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उन्होंने मीमांसक भट्ट लोल्लट के उत्पत्तिवाद, नैयायिक श्रीशंकुक के अनुमितिवाद, भट्टनायक के भुक्तिवाद का खण्डन करते हुये अपने सिद्धान्त जो अभिव्यक्तिवाद का प्रतिपादन किया है, जिसके अन्तर्गत इन्होंने प्रतिपादित किया है कि रस की अभिव्यक्ति होती है न की उत्पत्ति, अनुमिति और भुक्ति।

काश्मीरशैवदर्शन एवं आचार्य अभिनवगुप्त:-

हिमाच्छादित उत्तुंग शिखरों की रमणीक शोभा कश्मीर की तरफ ध्यान आकर्षित करती है। कश्मीर ने भारत और विश्व को मात्र अपनी सुरम्य सुषमा ही नहीं प्रदान किया है अपितु अपने नवीन समन्वयात्मक विचारों से परिपूर्ण शास्त्र भी प्रदान किये हैं। कश्मीर की पावन धरा ने व्याकरण, दर्शन और काव्यशास्त्र आदि भारतीय वाङ्गमय की शास्त्रीय धाराओं के नवप्रस्थानों का सूत्रपात किया है। कश्मीर ही वह पुण्यभूमि है जहाँ से हमें कथा साहित्य का भी उत्स प्राप्त होता है। यहाँ के शास्त्रों और शास्त्रकारों ने मानवता और प्रज्ञा को नवीन दृष्टि दी है। भारतीय परम्परा में आध्यात्मिक ज्ञान व दर्शन की दो धारायें प्रवाहित होती रहीं हैं- एक धारा है श्रुतिमूलक और दूसरी आगममूलक। आगममूलक धारा का प्रतिनिधित्व काश्मीर की विद्वत्परम्परा करती है और उस विद्वत्परम्परा के

प्रमुख आचार्य हैं अभिनवगुप्त जो काश्मीर शिवाद्वयवाद के प्रमुख पुरोधा हैं। यह शिवाद्वय या ईश्वराद्वय समय-समय पर आगम और निगम की स्वतन्त्र धाराओं के समन्वय का कारक रहा है। कश्मीर शैवदर्शन के अनुसार शिवतत्त्व प्रकाश व विमर्श शक्ति का सामरस्य है। काश्मीर शिवाद्वयवाद ने वास्तविक कर्तृत्वशक्ति की व्याख्या के रूप में स्वातन्त्र्यवाद का प्रतिपादन किया है। ईश्वर अर्थात् परम् शिव अपनी स्वतन्त्रता व स्वेच्छा से सृष्टि व संहार करता है। और यह आविर्भाव व तिरोधान की प्रक्रिया वह निरन्तर संचालित करता रहता है। शिव का कर्तृभाव ही शक्तितत्त्व है। जिसके बिना शिव स्वयं अस्तित्त्वहीन हैं। यह कर्तृत्त्वशक्ति न विकार है न विवर्त है अपितु यह परम् शिव की स्वतन्त्र सामर्थ्य को अभिव्यक्त करती है। शिव सत्य है और जगत् भी सत्य है। सत्य होने के साथ ही वह स्वतन्त्र भी है। परमार्थ का यह बोध जीवन और जगत् को पहचानने की नवीन दृष्टि प्रदान करता है।

काश्मीर शैवदर्शन अथवा प्रत्यभिज्ञा दर्शन का मूल उसके द्वारा प्रतिपादित 36 तत्त्व हैं । जिसमें से प्रथम दस तत्त्व- शिव, शक्ति, सदाशिव, सद्विद्या, कला, विद्या, राग तथा नियति काश्मीर शैवदर्शन की अपनी व्युत्पत्ति है। ग्याहरवाँ तत्त्व माया है, फिर प्रकृति, पुरुष, बुद्धि, अहंकार, मन, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण), पञ्च कर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ), पञ्च तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), पञ्चमहाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) है। कुछ आचार्य परम् शिव को सैंतीसवाँ तत्त्व स्वीकार करते हैं। इसे अनुत्तरतत्त्व भी मानते हैं। 36 तत्त्वों तक जगत् विश्वमय है और इसको पारकर 37वें तत्त्व की अवस्था में पहुँचना विश्वोत्तीर्ण है। प्रथम पाँच तत्त्वों को शुद्ध अध्वा और शेष इकतीस तत्त्वों को अशुद्ध अध्वा कहा जाता है। काश्मीर शैव में पञ्चकञ्चुक और तीनमलों का वर्णन है। यही कंचुक (कला, विद्या, काल, राग, नियति) माया का काम करते हैं। मायीयमल. कार्म्य मल और आणव मल से जीव गघिरा रहता है। यहाँ पर शिव ज्ञान के प्रतीक हैं और मल अज्ञान का। मल ही संसार का मूल है। आणव मल से जैसे-जैसे ज्ञान में स्वातन्त्र्य की तथा स्वातन्त्र्य में ज्ञान ही हानि होती है वैसे-वैसे ही सृष्टि का प्रथम स्पन्दन होता है।

यहाँ सबकुछ शिव की स्वातन्त्रशक्ति तथा लीला का अभिव्यञ्जक है। जिस प्रकार किसी नाटक में नट (अभिनेता) विभिन्न रूपों को ग्रहण करके सबके सामने प्रस्तुत होता है उसी प्रकार सांसारिक लीलामंच पर शिव ही विभिन्न उच्चावच, ज्ञानाज्ञानरूप, विषय-विषयिरूप, सूक्ष्म एवं स्थूल भूमिकाओं में स्वयं अवतीर्ण होता है। इसे ही 'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' में 'चितिः स्वतन्त्रः विश्वसिद्धिहेतुः' द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। शैवदर्शन के अनुसार विश्व चेतनतत्त्व की आत्माभिव्यक्ति है। अपने इच्छा, ज्ञान और क्रिया नामक शक्तियों द्वारा अनन्त शक्तियों से सम्पन्न ईश्वर विना किसी सहायता के अपने ही भित्ति पर स्वेच्छा से विश्व का उन्मीलन करता है- स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वम् उन्मीलयति। वह अपूर्व व अद्‌भुत कलाकार है और जैसा चाहता है वैसा संसार रचता है। वह लीलाधर है। संसार की रचना उसका संकुचन है और संहार उस शक्ति का विस्तार है।

शिवतत्त्व निर्विकल्पक एवं स्वतन्त्र है। प्रत्येक जीव में रहने वाला आत्मतत्त्व ही शिवतत्त्व है। शिव ज्ञानरूप एवं क्रियारूप दोनों है। यह पूर्ण अहंता का प्रतीक है। परम् शिव चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया शक्तियों से परिपूर्ण है। इसीलिये उसके स्वरूप को प्रकाश-विमर्शमय कहा गया है अर्थात् उसमें चैतन्य और क्रिया का सहज समन्वय है।

शिव और शक्ति में अभेद है। शक्ति के अभाव में शिव में किसी प्रकार का स्पन्दन सम्भव नहीं है। शिव में सिसृक्षा-भाव (सृष्टि की इच्छा) का उन्मेष ही शक्तितत्त्व है। यही सिसृक्षा शिव को शक्ति बना देती है। विश्वोत्तेर्ण शिव की विश्वोन्मुखता शक्तितत्त्व है। विश्व के समस्त पदार्थ शक्तिस्वरूप हैं। शक्तियों में चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया इन पाँच शक्तियों को प्रधान माना जाता है। इनमें से भी सर्वप्रधान शक्ति ऐ स्वातन्त्र्य शक्ति।

त्रिक दर्शन अर्थात् आगमशात्र, स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञा शास्त्र की सभी शाखायें सामान्यतः मुक्ति के चार उपायों को स्वीकार करती हैं- अनुपाय, शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय और आणवोपाय। इन चारों उपायों को उनके गुणों की प्रधानता के कारण ही आनन्दोपाय, इच्छोपाय, ज्ञानोपाय एवम् क्रियोपाय भी कहा जाता है। इनमें से शाम्भवोपाय अभेददृष्टिप्रधान,

शाक्तोपाय भेददृष्टिप्रधान तथा आणवोपाय भेददृष्टि-प्रधान है। इन विभिन्न उपायों का फल मुक्ति है।

त्रिक दर्शन का आधार आगमशास्त्र, स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञाशास्त्र रहा है। प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के विषय में 'सर्वदर्शनसंग्रह' में माधवाचार्य ने भी लिखा है। वहाँ प्रत्यभिज्ञादर्शन उनके द्वारा वर्णित सोलह दर्शनों में से एक है।

आचार्य अभिनवगुप्त का दार्शनिक अवदान बहुत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने काश्मीर शैव दार्शनिक परम्परा के पुनर्जीवन एवं प्रवाह का अद्भुत कार्य किया। यही कारण था कि वे शारदा देश अर्थात् कश्मीर की सर्वज्ञ पीठ पर अधिष्ठित थे। उनसे पूर्व इस अधिष्ठान का गौर आचार्य शंकर को प्राप्त था। तन्त्र-परम्परा को उन्होंने तन्त्रालोक जैसा अभूतपूर्व ग्रन्थ दिया। उनके अपने मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त उनके टीकाग्रन्थ भी बहुश्रुत, विख्यात व बहुमूल्य है। उनके द्वारा प्रणीत काव्यशास्त्रीय व नाट्यशास्त्री सिद्धान्तों में भी उनकी शिवभक्ति परिलक्षित होती है। चूँकि वे सभी शास्त्रों के ज्ञाता थे और उन्होंने शैवदर्शन को एक समन्वयपरक आलोक दिया तो यह उनकी समन्वयपरकरता उनके काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों में भी परिलक्षित होती है। अभिनव क मार्ग सहजता, सुगमता और समन्वय का मार्ग रहा है यही कारण है कि उन्हें विद्वत्-समाज में अत्यधिक प्रशस्ति प्राप्त हुयी है।

काश्मीर शैवदर्शन के कुल और क्रम परम्परा के ज्ञान का आधार आज आचार्य अभिनवगुप्त की रचनायें ही है। इस प्रकार परम्पराओं के अविच्छिन्न प्रवाह, उनके संरक्षण, संपोषण एवं संवर्द्धन का श्रेय भी आचार्य अभिनव को जाता है। आज स्थिति यह है कि सम्पूर्ण तान्त्रिक विचारधारा और उसके पाशुपत एवं कापालिक परम्परा के मर्म को समझने के लिये आचार्य अभिनव के ग्रन्थ आधारग्रन्थ की भूमिका निभाते हैं। क्योंकि इन पद्धतियों पर लिखे गये ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं। आचार्य अभिनवगुप्त ने त्रिक परम्परा को संरक्षित व पुष्पित-पल्लवित करने का प्रयास किया है। आज इस परम्पराअ के अन्य आधार ग्रन्थों की अनुपलब्धि के कारण अभिनवगुप्त के ग्रन्थ ही अब इस परम्परा में विकसित कुल-मतों को समझने

का एकमात्र साधन रह गये हैं। आचार्य अभिनवगुप्त इस कुल-मत को अनुत्तरत्रिक के नाम से स्थापित करने का प्रयास भी करते हैं।[74]

अभिनवगुप्त की यह विशिष्टता है कि उनकी अखण्डदृष्टि समस्त सन्दर्भों की एकसूत्रता का सर्वत्र अनुसंधान कर लेती है। कलात्मक सर्जनाशीलता और सहृदय के आनन्दबोध का स्रोत वह आनन्द या विसर्ग शक्ति को मानते हैं। अभिनव के मत में आनन्द हृदय की वह स्पन्दनावस्था है जिसमें सारे माध्यस्थों का विलय होकर शुद्ध एकत्व की स्थिति शेष रहती है।

काश्मीर शैव दर्शन के विद्वान् नवजीवन रस्तोगी के शब्दों में "अभिनवगुप्त (950-1020) ् की न केवल क्रम अपितु पूरे कश्मीर शिवाद्वयवाद के विकास में असाधारण भूमिका रही है। उन्होंने क्रम-सम्प्रदाय को चार तरह से उपकृत किया। प्रथम्, उन्होंने परम्परा को सुरक्षित बनाये रखा; दूसरे, अपने से पूर्व के प्रायः सभी आचार्यों और उनके ग्रन्थों के आकर ग्रन्थ के रूप में अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया; तीसरे, कुछ महत्त्वपूर्ण क्रम-ग्रन्थों की व्याख्या की; और चौथे, वह एक ऐसे मौलिक चिन्तक के रूप में उभरकर आये, जिन्होंने इस सम्प्रदाय को एक संग्रहमयी किन्तु विश्लेषणात्मक दृष्टि प्रदान की।"[75] उनके तन्त्रालोक, क्रमस्तोत्र जैसे ग्रन्थ क्रम-सम्प्रदाय को मौलिक अवदान है। साहित्य से जब वे शिवाद्वयवाद की ओर उन्मुख हुये तो उनकी प्रथम दृष्टि क्रम पर जाकर टिकी। और इसमें ही उनके व्यथित चित्त को संतुष्टि प्राप्त हुयी।

इस प्रकार काश्मीर शैवदर्शन की सभी धारायें अचार्य अभिनव के अवदान से ओतप्रोत हैं। आज आचार्य अभिनव की रचनायें इन दर्शनधाराओं एवं मतों का प्रवेशद्वार सिद्ध हो रही हैं।

आचार्य अभिनवगुप्त की राष्ट्र को देन:-

भारतीय साहित्य सदा से समाजोन्मुखी रहा है। यहाँ पर ज्ञान पर किसी ने एकाधिकार स्थापितकरने का प्रयास नहीं किया है। ज्ञान समाज में सभी तक पहुँचे इसका हर सम्भव प्रयास यहाँ हुआ है। भारतीय शास्त्रकारों

---

[74] काश्मीर की शैव संस्कृति में कुल और क्रम-मत, पृ.18-19

[75] काश्मीर की शैव संस्कृति में कुल और क्रम-मत, पृ.77

को ज्ञान जनता तक पहुँचना जनहित का विशेष कार्य लगता था अतः उन्होंने इस हेतु प्रयास किया। इसी क्रम में अभिनवगुप्त जैसे महान् क्रान्तिकारी शास्त्रकार हुये जिन्होंने प्राचीन ग्रन्थों का परिषाकर कर एवं उद्भावनाओं को सुस्पष्ट कर उसे जन-जन तक पहुँचाना अपना परम् कर्तव्य माना।

चाहे दर्शन का क्षेत्र हो या काव्य का, जब-जब विचारों पर स्थूल का आधिपत्य हुआ है, तब सूक्ष्म ने क्रान्ति का सूत्रपात किया है। जिससे एक नवीन सिद्धान्त की उद्भावना हुई, जिसने समस्त परम्परा को आत्मसात् करते हुए नवीन विचारों का सूत्रपात किया है। जिसप्रकार दर्शन के क्षेत्र में चार्वाक के स्थूलमत के विरोध में आचार्य शंकर द्वारा सूक्ष्म वैदान्तिक आत्मवाद की प्रतिष्ठा हुई, उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भामह, दण्डी, उद्भट, वामन प्रभृत आचार्यों के शरीरवाद के विपक्ष में काव्यात्मवाद की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से ध्वन्यालोक की रचना हुई, जिसने पूर्व-प्रचलित समस्त सिद्धान्तों को आत्मसात् कर काव्य के आत्मपक्ष की ओर सहृदय जनों का ध्यानाकर्षण करवाया।

आनन्दवर्द्धन ने जिस काव्यात्मतत्त्व को प्रतिष्ठापित किया तथा अभिनवगुप्त ने जिसको पुष्पित-पल्लिवत और संवर्धित किया, वह 'ध्वनि' अर्थात् शब्द का चतुर्थकक्ष्यानिविष्ट व्यङ्ग्य अर्थ है। व्यङ्ग्यार्थ ही प्रधान होकर ध्वनिकाव्य बनता है। कविवाणी की सार्थकता वस्तुतः इसी ध्वनितत्त्व के स्फुरण में निहित है।

आनन्दवर्द्धन ने जिस 'ध्वनितत्त्व' की स्थापना करके काव्यात्मतत्त्व के भास्वर रूप को आलोकित करते हुए, काव्य के प्रकीर्ण एवं व्याकीर्ण तत्त्वों को संगत करते हुए साहित्यालोचन को नवीन वाणी, नवल वेग, एवं नवजीवन प्रदान किया, वह 'ध्वनितत्त्व' यद्यपि इस क्षेत्र में नवीन प्रयोग था, परन्तु परम्परा से असम्बद्ध कदापि नही था। उस 'ध्वनितत्त्व' का आधारभूत प्रतीयमान अर्थ महाकवियों की वाणी में विद्यमान था। स्वयं ध्वनिकार ने इस सिद्धान्त का स्रोत वैयाकरणों के स्फोटसिद्धान्त को बताया है। इस सिद्धान्त ने प्रचलित समस्त काव्यशात्रीय सिद्धान्तों रस, अलंकार, औचित्य, रीति, वृत्ति तथा वक्रोक्ति को अन्तर्निहित किया है। आनन्दवर्द्धन के इस सिद्धान्त की की विशेषता यह है कि इसमें उत्तम काव्य के मूलभूत

तथा अनिवार्य सिद्धान्त अर्थात् ध्वनि की सूक्षम मीमांसा की गयी है, जिसके माध्यम से, सहृदय, पाठक विभिन्न मार्गों से होता हुआ स्पष्टतः वाच्य से अवाच्य तक पहुँच सकता है। इसी अवाच्य तक पहुँचकर ही सहृदय रसास्वादन में समर्थ होता है। रस मूलतः अवाच्य तत्त्व है। ध्वनिकार एवं अभिनवगुप्त ने रस-ध्वनि को विशेष महत्व दिया है। जहाँ कोई रस अथवा भाव प्रधान होता है तथा प्रत्यक्ष रूप से अवाच्य होने के कारण उसे व्यञ्जित ही किया जा सकता है, वहाँ रस-ध्वनि होती है। रसध्वनि को काव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण निकष माना गया है। शब्द, अर्थ, संघटना, गुण आदि वाह्य अलंकरण वस्तुतः इसी पराकाष्ठा, रसास्वादन में सहायक की भूमिका का निर्वहन करते है। यहाँ अवाच्य का अर्थ सर्वथा अनिर्वचनीय कदापि नहीं है। ध्वनिकार ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही इस शंका का निराकरण कर दिया है। जब ध्वैतत्त्व परिभाषित हो गया तो उसकी अनिर्वचनीयता का तो स्वयमेव निराकरण हो गया। वाच्य और अवाच्य परस्पर घनिष्ठ संबन्धी हैं। वाच्य के विना अवाच्य की सत्ता ही नहीं हो सकती। इसीलिये ध्वनि का मूल 'रसध्वनि' अभिधामूला है, जिसमें वाच्यार्थ की सत्ता सदा विद्यमान रहती है तथा वही तथा वही वाच्यार्थ ध्वनित होकर सहृदयाह्लादकारी बनता है। ध्वन्यार्थ की गूढ़ता के कारण सहृदय ही इसका सम्यक् आस्वाद कर सकता है। सहृदय, रसिक एवं काव्यतत्त्व मर्मज्ञ ही इस ध्वन्यार्थ की ध्वन्यात्मकता को समझ सकते हैं, क्योंकि अवाच्य तो वस्तुतः हृदय का क्षेत्र है, और हृदय के स्तर तक व्यक्ति तभी पहुँच सकता है, जब हृदय से उसका तादात्म्य स्थापित हो, यह तादात्म्य सहृदय में ही सम्भव है।

अभिनवगुप्त ने इस सिद्धान्त का सूक्ष्म विवेचन करके काव्यविद्या को एक प्रामाणिक रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया है। इन्होंने इस सिद्धान्त में कोई विशेष परिवर्तन न करके इसकी सूक्ष्म मीमांसा में अपनी मेधा का उपयोग किया है। पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रयोगात्मक चिन्तन को प्रकाश में लाने का श्रेय ध्वन्यालोक को ही है। संस्कृत में ध्वन्यालोक के समान प्रभावशाली अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है।

समस्त भारतीय वाङ्गमय, संस्कृतेतर वाङ्गमय में ध्वनितत्त्व की परिव्याप्ति किसी न किसी रूप में है। हिन्दी काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों पर

संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। प्रसाद ने तो 'छायावाद' शब्द की व्युत्पत्ति ही ध्वनिसिद्धान्त से सिद्ध ही है, तथा ध्वन्यालोक एवं लोचन से इसका उदाहरण भी प्रस्तुत किया है।

आचार्य अभिनवगुप्त की अभिनवभारती ही भारती नाट्य-वाङ्गमय का प्रमुख एवं आधारभूत स्रोत है। आज अभिनवभारती के कारण ही हम अपनी परम्परा का प्रवाह एवं प्राचीनता का उद्घोष गर्व के साथ समस्त विश्व के समक्ष करने में सक्षम हैं।

काव्यशास्त्र के सभी सिद्धान्तों का समाहार उन्होंने बिना किसी विरोधात्मक स्थिति के इतनी सुन्दरता से ध्वनि के अन्तर्गत किया है कि उनके बाद अभिधावादी महिमभट्ट के अतिरिक्त ध्वनिसिद्धान्त का कोई सशक्त प्रतिपक्षी नहीं हुआ अपितु अनुयाअयी और उसके संवर्द्धक ही मिले।

शैवदर्शन पर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन कर एवं अनेक ग्रन्थों टीका कर अपने समय में प्रचलित विभिन्न दर्शनधाराओं के समन्वय एवं सामान्य समस्याओं का समाधान स्वाभाविक रूप से आचाअर्य अभिनव ने किया है। उन्होंने शैव के समस्त सम्प्रदायों में सहभाव एवं समन्वय विकसित करने के साथ ही वैष्णव, बौद्ध, जैन आदि अन्य मतों का ज्ञान प्राप्त कर उनको भी एक समन्वयात्मक भावभूमि पर लाकर खड़ा किया है। यदि हम अभिनव के गुरुओं को ही देखें तो पायेंगे कि उनमें कितना सर्वस्वीकरण की भावना एवं ज्ञान के प्रति श्रद्धा थी। सभी धाराओं का ज्ञान प्राप्त कर उनका समाहार आचार्य ने अपने शैवसिद्धान्तों की व्याख्या में किया है।

आचार्य अभिनवगुप्त की प्रासंगिकता- आचार्य अभिनव उस शारदापीठ, कश्मीरभूमि से सम्बन्ध रखते हैं जिस अकेली धरा ने परम्पराअ में इतने विद्वानों और शास्त्रकारों को प्रसूत किया है जिनकी यदि गिनती की जाय तो विश्व के किसी अन्य भाग में जन्में विद्वानों से कई गुना होगी। अपने प्राकृतिक सुषमा एवं विद्वत्वास के कारण स्वर्गभूमि के रूप में प्रसिद्ध कश्मीर की धरा आज किस स्थिति पर पहुँच गयी है, यह प्रश्न अभिनव के बहाने विचारणीय है। यह वही कश्मीर की धरा है जहाँ से भारतीय शास्त्र-दर्शन-विज्ञान-व्याकरण-काव्य-साहित्य और लोककथा की सबल व सशक्त परम्परायें निःसृत व विकसित हुयी है और इन परम्पराओं ने भारतीय चिति के शाताब्दियों तक प्रबोधन व दिशानिर्देशन का कार्य किया है और आज भी कर रही हैं। वही केसरगन्धयुक्त कश्मीर आज बारूद की गन्ध में

लिपटा हुआ है। अलगाववादा, आतंकवाद और चरमपन्थ की जन्मस्थली और निवासस्थली बन गयी कश्मीर-धरा। वहाँ के विद्वत्-परम्परा के संवाहक और संरक्षक आज उसी धरा से निष्कासित कर दिये गये हैं। सर्वसमावेशी शैव धरा में आज किसी भी रूप में सामञ्जस्य व समरस वातावरण नहीं दिखायी पड़ता। शताब्दियों के संघर्ष व षड्यन्त्र का यह दुष्परिणाम है कि आज कश्मीर में कश्मीर की विद्वत्-परम्परा के विषय में यत्किञ्चित् जानकारी रखने वाले कुछ ही लोग बचे हैं और सम्पूर्ण भारत भी सामान्यतः कश्मीर की अभूतपूर्व शास्त्रकारों की परम्परा, साधनाअस्थली, व ज्ञानस्थली से अनभिज्ञ है। परतन्त्रता के काल में भारतीय शिक्षानीति में कुटिल नीतिपूर्वक भारतीय विद्या के प्रमुख स्थानों और संस्थानों को इस प्रकार ध्वस्त करने का प्रयास किया गया है कि आने वाली पीढ़ियों को देखने मात्र के लिये ध्वन्सावशेष भी न प्राप्त हो, जिससे कि वे अपनी समृद्ध विरासत के विषय में अनुमान तक न लगा सके। भारतीय स्वाभिमान और अस्मिता को कुचलने की इस कुटिल नीति का ग्राअस बना है कश्मीर। वहाँ की विद्वत्परम्परा को इस प्रकार से छिन्न-भिन्न करने क प्रयास किया गया कि किसी को विश्वास न हो कि यहाँ इतनी समृद्ध चिन्तन धारायें विकसित हो सकती हैं। आज कश्मीर की दशा ऐसी ही है कि सहज ही उसको देखकर यह अविश्वसनीय लगता है कि यह इतने बड़े मर्मज्ञ मनीषियों की भूमि रही है। यह शिव और परम्शिव के उपासकों की साधनास्थली रही है।

कश्मीर की विद्वत्परम्परा को ही नहीं आक्रान्त, भंग और भ्रष्ट किया गया अपितु उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिन्हों को भी उच्छिन्न कर दिया गया। शारदापीठ की स्थिति के कारन कश्मीर शारदाभूमि रही है है । वहाँ संस्कृत शारदा लिपि में लिखी जाती थी। संस्कृत-परम्परा की क्य बात करें शारदा-लिपि ही लुप्तप्राय हो गयी है आज। ऐसा एक दिन में और सहज भाव से नहीं हुअ अपितु यह सोची-समझी, सुनियोजित षड्यन्त्र का परिणाम है। आज स्थिति यह है कि शारदा पढ़ सकने वाले बस गिनती में विद्वान् रह गये हैं। कुछ स्वयंसेवी संस्थानों द्वारा युवा पीढ़ई को शारदा सिखाकर लिपि के उत्थान का कार्य किया ज रहा है। कश्मीर की लिपि, भाषा और संस्कृति सभी का शनैः-शनैः पूरा कलेवर ही बदल दिया गया। मध्यकाल में बड़ी संख्या में कत्लेआम और धर्मपरिवर्तन हुये आज वहाँ लगभग सब कुछ परिवर्तित है। कश्मीर की अधिष्ठात्री देवी शारदा का स्थान शारदापीठ

आज पाक-अधिकृत कश्मीर में स्थित है, जहाँ पूजा-अर्चना क्या दर्शन के लिये जाना भी सरल कार्य नहीं है।

स्वतन्त्रता से पूर्व और स्वतन्त्रता के बाद इस देश में हिन्दूविरोधी छद्म सेकुलरों के द्वारा हरसम्भव प्रयास किया गया कि हमारे देश, विश्व और विशेषकर देश की युवा पीढ़ी कश्मीर के विगत वैभव को किसी भी प्रकार न जाअन पाये इसलिये लगातार कश्मीर में बारूद की फसलें सुलगती रहीं और पूरे देश का मानस अन्य सकारात्मक विषयों को छोड़कर उसी बारूद के धुँवे में उलझता रहा और समय बीतता रहा। इस आपाधापी और आपातस्थिति जैसे वातावरण ने कश्मीर की ज्ञान-परम्परा की तरफ ध्यान न जाने दिया। यदि यह कहा जाये कि इन सब कृत्यों द्वारा पूरे भारत को दिग्भ्रमित और कश्मीर की परम्परा से उसकी दृष्टि हटाने का कार्य किया गया तो अत्युक्ति न होगी। यह एक सोची-समझी रणनीति थी और रणनीति है।

हमारा इतिहास साक्षी है कि जब आप किसी भी वस्तु या विषय पर बहुत दिन ध्यान न दिया जाय तो वह विस्मृत हो जाती है, यही बात कश्मीर की ज्ञान परम्परा के साथ घटित हुयी।

आचार्य अभिनवगुप्त वह सशक्त माध्यम हैं जिनको विश्वसाहित्य में कोई नकार नहीं सकता। सौभाग्य का विषय है कि उनका स्थान व स्थितिकाल भी निर्विवाद है अतः उन्हें कोई किंवदन्ती-प्रसूत या कल्पना नहीं कह सकता। इस प्रकार सभी तथाकथित भारतविरोधियों का मुँह बन्द करने के लिये और उनकी कश्मीर-स्मृति को वापस लाने के लिये अभिनव की प्रत्येक कृति सक्षम है। विचारों में भी कोई विवाद नहीं है क्योंकि उनके विचार समन्वयपरक हैं। अभिनव एक ऐसे आचार्य भी हैं जिनका अध्ययन-अध्यापन और शोध क्षेत्र सहज ही संस्कृत-पाठ्यक्रम से बाहर के पाठ्यक्रमों में भी जाता है जिसमें नाट्यशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र, दर्शनशास्त्र और समाजशास्त्र सम्मिलित है। यह भी एक अनुकूल स्थिति है। आज विश्व के अनेक विद्वान् अभिनव के सिद्धान्तों में नवीन उद्भावना के सूत्र खंगाल रहे हैं, यह भी सकारात्मक है।

ऐसी स्थिति में आज अभिनव के माध्यम से कश्मीर की ज्ञान परम्परा और बौद्धिक सम्पदा पर एक सकारात्मक और सार्थक बहस आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है। भारत की अविभाज्यता में यह बहस एक

महत्त्वपूर्ण स्तम्भ साबित होगी। इसी के साथ- ही साथ आज उन षड्यन्त्रों के मुखर पर्दाफाश की आवश्यकता है जिसके तहत अभी एक-दो दशक पहले तक कश्मीर के विद्वानों के सिर-क़लम होते रहे हैं और उनका घाटी से निष्कासन होता रहा है। यह भारतीय बौद्धिक परम्परा के अवनयन का एक रचा-रचाया षड्यन्त्र है, यह षड्यन्त्र कब से प्रारम्भ हुआ, कौन इसका प्रमुख पोषक है इन बातों पर भी आज शोध और चिन्तन –मनन की आवश्यकता है।

सन्दर्भग्रन्थ:

अभिनवगुप्त, *अभिनवभारती,* सं . नगेन्द्र, व्या. आचार्य विश्वेश्वर, दिल्ली : दिल्ली विश्वविद्यालय, १९७३.

आनन्दवर्द्धन, *ध्वन्यालोक, (श्रीमदभिनवगुप्तपादविरचित-'लोचन'-सहितः),* व्या .जगन्नाथ पाठक , वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, २००३.

_____, *ध्वन्यालोक,* व्या . आचार्य विश्वेश्वर , वाराणसी : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, १९९८.

_____,*ध्वन्यालोक*, (लोचन सहित) व्या. रामसागर त्रिपाठी, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, १९६३.

_____, *ध्वन्यालोक*, अनु. कृष्ण कुमार , मेरठ : साहित्य भण्डार, १९७६.

_____, *ध्वन्यालोक*, (दीपशिखा टीका सहित), सं. चन्द्रिका प्रसाद शुक्ल , वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, १९८३.

_____, *ध्वन्यालोक*, (लोचन सहित , आशुबोधिनी हिन्दी टीका), अनु. सुरेन्द्रदेव स्थानक शास्त्री, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन , १९८६, गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला, ७६.

काणे, पी. वी, *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास* , अनु. इन्द्रचन्द्र शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिली, 1966.

डे, सुशील कुमार, *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास*, अनु. मायाराम शर्मा , पटना : बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी , १९८८.

भरतमुनि, *नाट्यशास्त्र, (अभिनवभारती सहित),* व्या . पारसनाथ द्विवेदी , वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यलय, १९८६.

Pandey, K. C, *Abhinavgupta: A Historical and Philosophical Study,* Chaukhambha Surbharati Prakashan, Varanasi, 2006.

डॉ. ममता त्रिपाठी दिल्ली विश्वविद्यालय के
संस्कृत विभाग में सहायक प्राध्यापिका हैं।

भारत नीति प्रतिष्ठान
India Policy Foundation
D-51, First Floor, Hauz Khas, New Delhi-110016
Tel : 011-26524018 • Fax : 011-46089365
E-mail : info@ipf.org.in, indiapolicy@gmail.com
Website : www.ipf.org.in